जनसांख्यिकीय भाज्य का फायदा उठाना

2
अध्याय

नीति निर्माताओं का सामान्यतया ध्यान अल्पकालिक प्रबंधन विषयों पर होता है। परन्तु अल्पकालिक विषय दीर्घकालिक विषयों के लिए सेतु का काम करते है। जिस केन्द्रीय दीर्घकालिक विषय का भारत सामना कर रहा है वह है कि अच्छी नौकरियां कहां से आएंगी। उत्पादनकारी नौकरियां विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं। और एक अच्छी नौकरी समावेश के रूप में सर्वोत्तम होती है। हमारी आधी से अधिक जनसंख्या कृषि पर निर्भर है, परंतु अन्य देशों के अनुभव से पता चलता है कि कृषि में प्रतिव्यक्ति आय काफी बढ़ने पर कृषि पर निर्भर व्यक्तियों की संख्या कम हो जाएगी। जहां एक और उद्योग नौकरियां सृजित कर रहे हैं, वहीं उनमें से अधिकांश नौकरियां असंगठित क्षेत्र में निम्न उत्पादनकारी और गैर-संविदागत होती हैं, निम्न आय और बहुत कम सुरक्षा प्रदान करती हैं तथा कोई फायदा नहीं होता है। सेवा संबंधी नौकरियां अपेक्षाकृत उच्च उत्पादकता वाली होती है। परन्तु सेवाओं में रोजगार वृद्धि हालिया वर्षों में धीमी रही है। भारत के समक्ष चुनौती, कृषि में उत्पादकता बढ़ाते हुए, कृषि क्षेत्र के बाहर विशेष रूप में संगठित विनिर्माण और सेवा क्षेत्रों में उत्पादनकारी नौकरियों के तीव्र विकास की दशाओं का निर्माण करना है। इस चुनौती का सामना करने का फायदा होगा, दशकों तक सुदृढ़ समावेशी विकास।

2.1 विकास आशावादियों का भारत के जनसांख्यिकीय भाज्य में विश्वास है कि जनसंख्या के भाग के रूप में युवा और प्रौढ़ व्यक्तियों के भाग द्वारा यथा मापित भारत का निर्भरता अनुपात, आने वाले दशकों में बहुत तेजी से नीचे आएगा। (चित्र 2.1 देखें) अधिक कामकाजी आयु के व्यक्तियों से अभिप्रेत होगी वर्कर, विशेषकर उत्पादकारी आयु वर्गो में, अधिक आय, अधिक बचत, प्रति वर्कर अधिक पूंजी और अधिक विकास। इसके अलावा, चूंकि जनसांख्यिकीय बदलाव, उर्वरता ह्रास से संबद्ध है, श्रम ताकत में महिलाओं की अधिक भागीदारी से इस परिवर्तन अवधि को सहयोजित किया जा सकेगा। (बैली 2006)

चित्र 2.1: जनसंख्या निर्भरता अनुपात

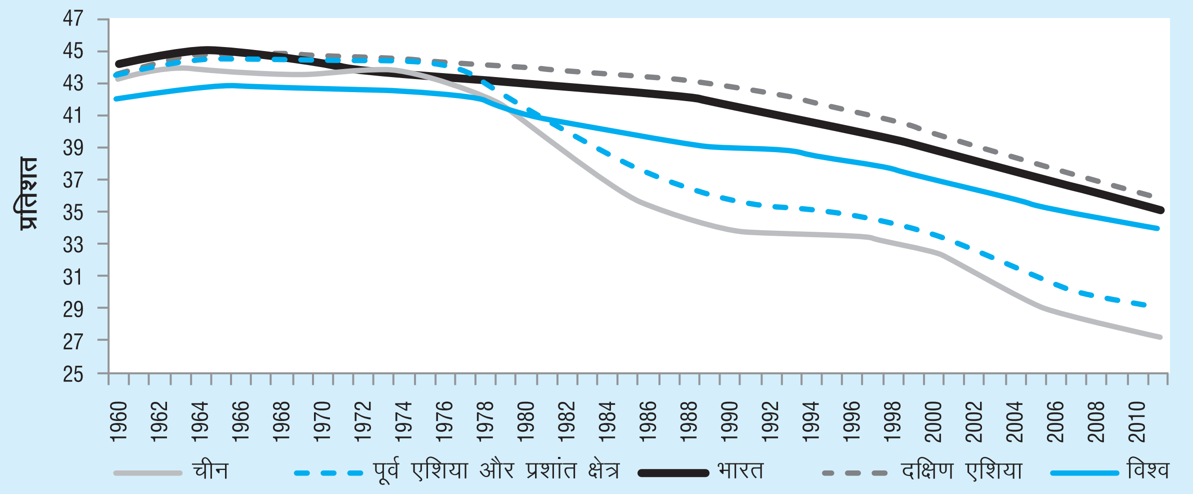

स्रोतः विश्व बैंक (2012) और लेखक की गणना
टिप्पणीः जनसंख्या का निर्भरता अनुपात 100 के रूप में परिभाषित किया गया है। [जनसंख्या आयु 15-64 (कुल का %)]. यह परिभाषा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ-2006) के अनुरूप है।

2.2 हाल के वर्षों में प्रत्येक तीव्र विकसित एशियाई अर्थवयवस्था में विकास हुआ है क्योंकि उसमें जनसांख्यिकीय परिवर्तन हुआ है (सारणी 2.2 देखें)। स्वयं भारत में, अय्यर और मोदी 2011 दस्तावेज में 1991-2001 की अवधि में उच्च विकास राज्यों (तमिलनाडु, कर्नाटक और गुजरात) में जो निर्भरता अनुपात था, वह निम्न विकास राज्यों (बिहार, मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश) के मुकाबले, 8.7 प्रतिशतता बिंदु कम था तथा वार्षिक औसत विकास दर 4.3 प्रतिशतता बिंदु अधिक थी। उनका तर्क है कि कम विकास वाले राज्यों को आगे चलकर इस जनसांख्यिकीय भाज्य से अधिक फायदा होगा क्योंकि उच्चतर आय और निम्न उर्वरता जनसांख्यिकीय आंकड़ों को परिवर्तित कर देते हैं। वास्तव में, 2001-2011 की अवधि में, अब तक फिसड्डी राज्यों में औसत लगभग 5 प्रतिशत वार्षिक विकास हुआ है। फिसड्डी राज्यों के विकास और अग्रणी राज्य विकास के बीच केवल 1.5 प्रतिशत बिंदुओं का अंतर है। इसलिए प्रतीत होता है कि जनसांख्यिकीय परिवर्तन का विकास के साथ आपसी संबंध है, कुछ कारणों से विश्वास होता है कि केजुअल्टि फ्लो दोनों तरफ होते हैं। निम्नतर निर्भरता अनुपातों से विकास बढ़ता है और उच्चतर विकास से उर्वरता कम होती है और परिणामस्वरूप निर्भरता अनुपात भी प्रभावित होता है।

2.3 विकास आशावादी प्रसन्नता के दूसरे कारण की ओर संकेत करते हैं। देश भर के साक्ष्य से पता चलता है कि उत्पादकता आयु का एक वर्धित कृत्य है, और 40-9 का आयु वर्ग कार्य अनुभव की वजह से सर्वाधिक उत्पादकारी होता है। (फेयरर 2007)। 2011-30 की अवधि में भारतीय श्रमिक बल में आधे से अधिक वृद्धि 30-49 आयु वर्ग में होगी, जबकि चीन, कोरिया और संयुक्त राज्य अमेरिका में इस आयु वर्ग का हिस्सा घट जाएगा। जबकि भारत अपना सर्वाधिक उत्पादनकारी दस्ता (को हॉर्ट) बढ़ा रहा होगा, वहीं सर्वाधिक विकसित देश और चीन जैसे, कुछ विकासशील देश आने वाले दशकों में अपने दस्तों को संकुचित कर रहे होंगे, यह भी लाभ का अन्य स्रोत हो सकता है।

2.4 विकास निराशावादी, इससे संतुष्ट नहीं हैं। अधिकांश कार्यशक्ति को अधिक वर्कर्स में तब्दील कर दिया जाता है यदि उसके लिए उत्पादनकारी नौकरियां हैं। क्या पर्याप्त उत्पादनकारी नौकरियां होंगी। इस प्रश्न का उत्तर देने में आसानी के लिए एक तरीका भारत के विकास पथ और अन्य धनी आबादी वाली तीव्र विकास करती एशियाई अर्थव्यवस्थाओं के बीच सामान्य बातों और अंतरों को समझना है। इस बात की तुलना करके कि भारत आज कहां है और वे देश अपने विकास में उसी अवस्था पर कहां थे, साथ ही यह भी देखकर कि उन्होंने उसके आगे क्या किया, हमें इस पर एक बेहतर परिदृश्य मिल सकता है कि भारत को क्या करने की आवश्यकता है। वास्तव में, कोई ऐसा विश्लेषण दो महत्वपूर्ण सावधानियों के साथ करना होगा। प्रथम, देश भिन्न-भिन्न होते हैं और आवश्यक रूप से समान पथों का अनुसरण नहीं करते हैं। दूसरा, वैश्विक परिवेश बदल गया है। भारत अब जिन अवसरों का सामना कर रहा है वे उन से भिन्न हैं जो तीव्र विकास करने वाले देशों ने पहले सामना किया था जब वे विकास की समान अवस्था पर थे। बिना सोचे विचारे अपने पथ से विलग होना शायद बुद्धिमता नहीं होगी।

तुलनात्मक विकास और व्यापार

2.5 क्या अनुसरण किया जाए, हम उच्च विकास की अवधियों के प्रारंभिक ''टेकऑफ'' की तारीखों के आसपास चुनिंदा एशियाई देशों में विभिन्न आर्थिक परिणामों का विश्लेषण करके

चित्र 2.2: प्रति व्यक्ति आय और निर्भरता अनुपात में वृद्धि:चुनिंदा एशियाई अर्थव्यवस्थाएं

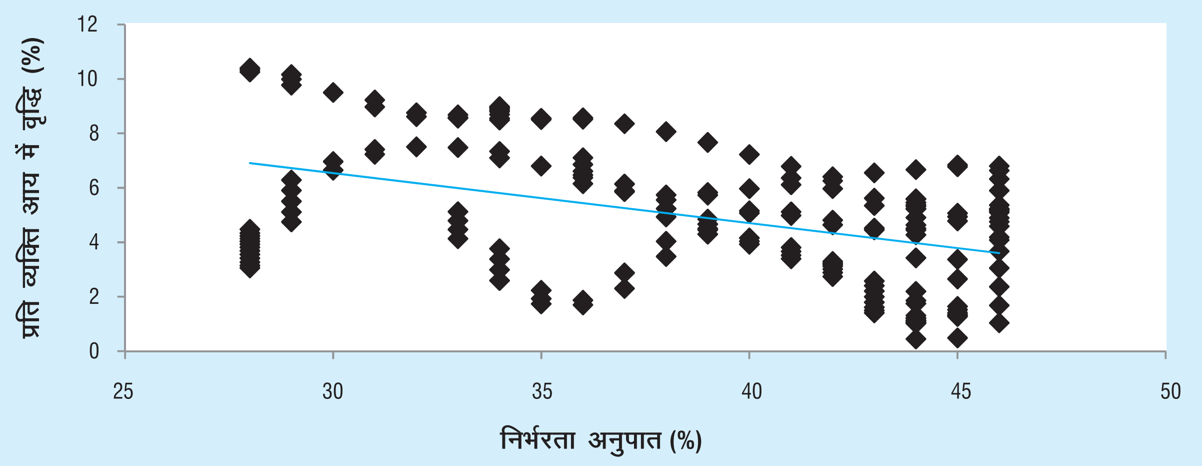

स्रोत: विश्व बैंक (2012) और लेखक की गणना

टिप्पणी: जनसंख्या का निर्भरता अनुपात 100 के रूप में परिभाषित किया गया है। [जनसंख्या आयु 15-64 (कुल का %)].
प्रति व्यक्ति आय की माप 2000 में अमेरीकी डॉलर में प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद (स.घ.उ.) द्वारा की गई है। विस्तृत आलेख ऋणात्मक प्रति व्यक्ति आय वृद्धि को दर्शाता है। चुनिंदा एशियाई अर्थव्यवस्था में चीन, भारत, इंडोनेशिया और कोरिया शामिल है।

शुरूआत करते हैं। हम आईएमएफ (2006) पर आधारित तुलनात्मक एशियाई देशों के लिए टेकऑफ वर्ष चिह्नित करते हैं। ये तारीखें चीन, इंडोनेशिया और कोरिया के लिए क्रमशः 1979, 1973 और 1967 हैं। भारत के लिए हम 1991 को टेकऑफ वर्ष के रूप में परिभाषित करते हैं। भारत में 1991 में ही आर्थिक सुधार शुरू हुए थे। सारणी 2.3-2.4 में निम्नलिखित वर्णन किया गया है:

- चित्र 2.3 क, दर्शाता है कि भारत टेक ऑफ से पहले उसी विकास दर पर विकास कर रहा था जिस पर एशियाइ देश विकास कर रहे थे टेक-ऑफ के बाद, यह इण्डोनेशिया के हमकदम रहा लेकिन चीन और कोरिया ने और तेजी से विकास किया।
- चित्र 2.3 ख, हम तारीख 0 को उस वर्ष के रूप में निर्धारित करते हैं जिसमें देश का प्रतिव्यक्ति स.घ.उ. में

चित्र: 2.3 क: प्रति व्यक्ति आय - आरंभिक वर्ष से

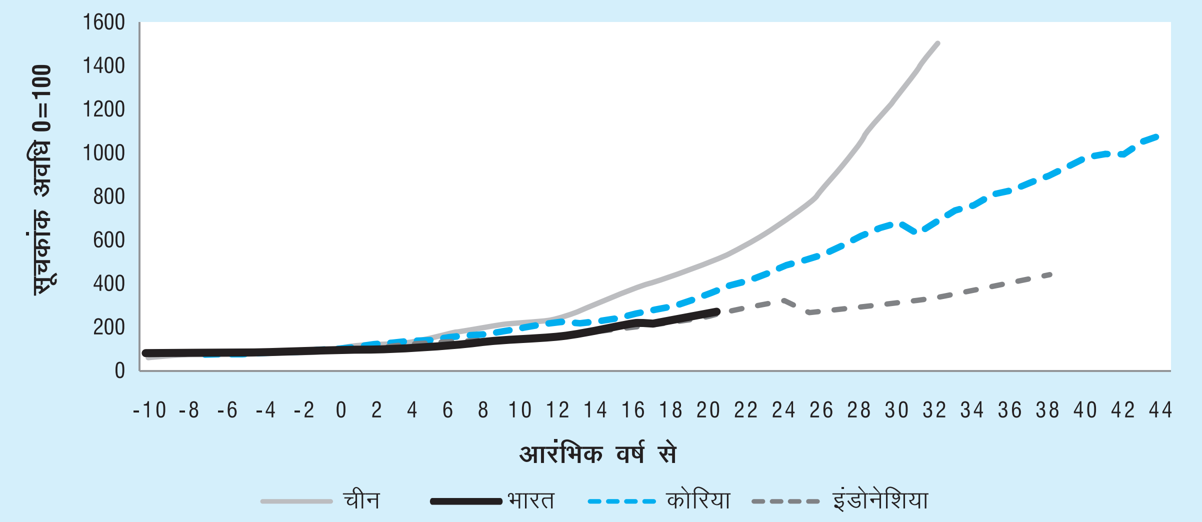

स्रोत: विश्व बैंक (2012) और लेखक की गणना
टिप्पणी: आरंभिक वर्ष 0 से चीन, भारत, इंडोनेशिया, और कोरिया के संदर्भ में क्रमशः 1979, 1991, 1973 और 1967 के रूप में परिभाषित किया गया है।
प्रति व्यक्ति आय 2000 में अमरीकी डालर के अनुसार सकल घरेलू उत्पाद प्रति व्यक्ति द्वारा मापी गयी है।

चित्र 2.3 ख: प्रति व्यक्ति आय - वर्ष टेकऑफ से (वैकल्पिक परिभाषा-।)

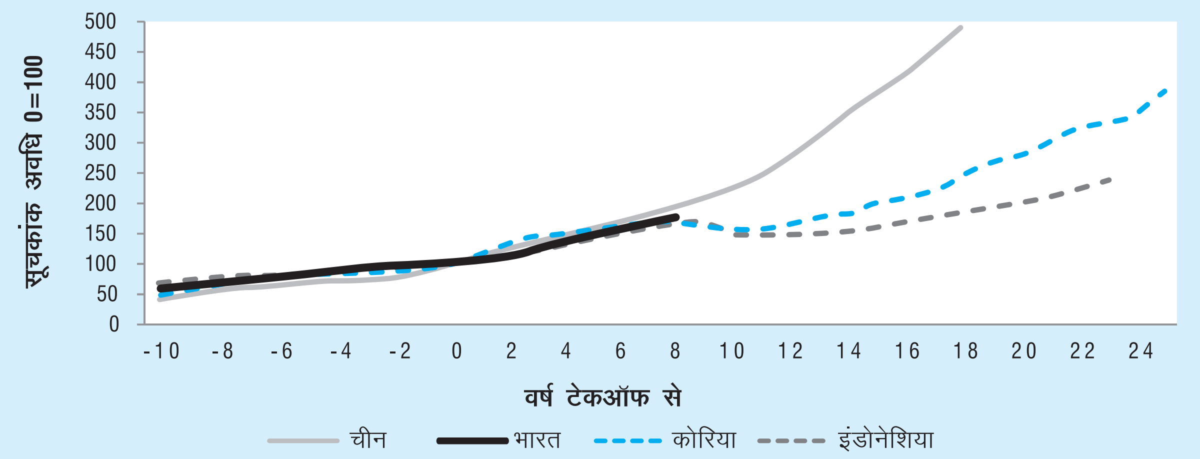

स्रोत: विश्व बैंक (2012) और लेखक की गणना
टिप्पणी: आरंभिक वर्ष 500 डालर से आगे देश की प्रति व्यक्ति आय वर्ष के रूप में परिभाषित की गई है।
आरंभिक वर्षो को चीन, भारत, इंडोनेशिया, और कोरिया के संदर्भ में क्रमशः 1993, 2003, 1988 और 1951 माना गया है।
प्रति व्यक्ति आय 2000 में अमरीकी डालर के अनुसार सकल घरेलू उत्पाद प्रति व्यक्ति द्वारा मापी गयी है।

[1] आईएमएफ (2006) द्वारा चीन के संबंध में आरंभिक वर्ष की परिभाषा उस वर्ष के रूप में दी गई है जबकि चीन में प्रमुख आर्थिक सुधारों की शुरुआत हुई। नए औद्योगिकीकृत अर्थव्यवस्थाओं (जिनमें कोरिया शामिल है) तथा आसियान-4 देशों (जिनमें इंडोनेशिया शामिल है) के लिए इस तिथि की परिभाषा उस वर्ष के रूप में कि गई है जबकि सतत् मूल्य निर्यात वृद्धि का तीन वर्षों का सचल औसत 10% से अधिक हो गया।

2000 में 500 अमरीकी डॉलर को पार कर गया, वह वर्ष जब देश का निर्भरता अनुपात 40 प्रतिशत से भी नीचे चला गया। इन वैकल्पों ने चीन की विकास दर बहुत जबरदस्त रही जबकि भारत की विकास दर इण्डोनेशिया के समान थी। टेक ऑफ के बाद कोरिया भारत के समान विकास पथ पर थी हालांकि 10 वर्षों के बाद इसके पथ का स्कोप धीरे-2 बढ़ा।

- चित्र 2.4 में हम हमारी सबसे पहले टेक-ऑफ परिभाषा के साथ आधार पर 0 वर्ष के साथ विश्व व्यापार में देश के हिस्से का सूचकांक तैयार करते हैं (चीन, इण्डोनेशिया, कोरिया और भारत के संबंध में वर्ष 1979, 1973, 1967 और 1991) दिलचस्प बात यह है कि विश्व व्यापार के हिस्से में भारत का विकास चीन के समान है और टेक ऑफ के बाद उसी अवधि में इण्डोनेशिया से अधिक है। भारत की स्थिति जीडीपी अनुपात में व्यापार से दिखाई देती है जो 2011 में 55 प्रतिशत से अधिक है इसकी तुलना में स.रा. अमरीका के बारे में अनुपात 31 प्रतिशत ही है।

2.6 इस प्रकार साक्ष्य से ली गयी बात की हमने जांच की है वह है कि भारत का विकास निष्पादन वैसा ही रहा है जैसाकि टेकऑफ के पश्चात् कुछ तीव्र विकास वाली एशियाई अर्थव्यवस्थाओं का रहा है। परंतु चीन के शानदार विकास जैसा नहीं।

चित्र 2.3 ग: प्रति व्यक्ति आय - वर्ष टेकऑफ से (वैकल्पिक परिभाषा-II)

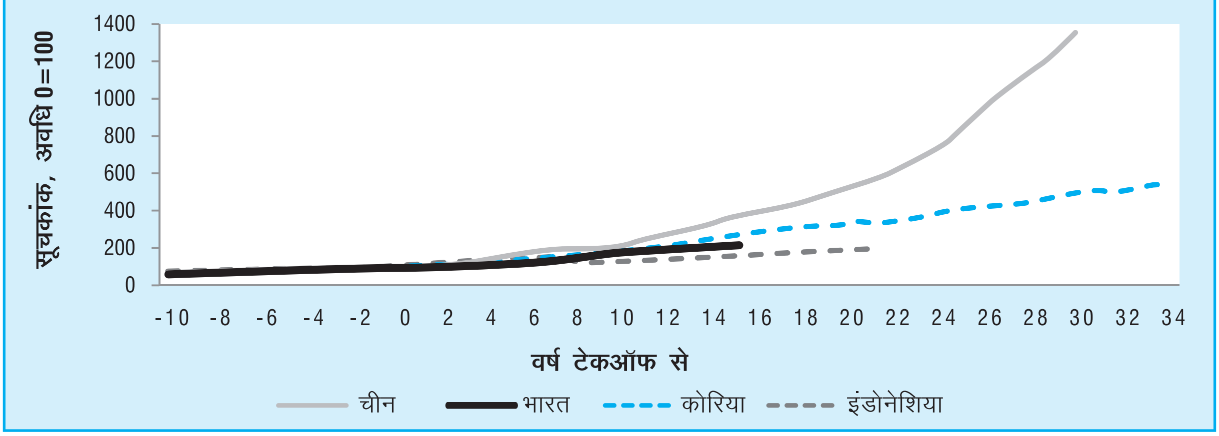

स्रोत: विश्व बैंक (2012) और लेखक की गणना

टिप्पणी: आरंभिक वर्ष की परिभाषा उस वर्ष के रूप में दी गई है जबकि देश का निर्भरता अनुपात 40% से कम हो गया।
आरंभिक वर्ष को चीन, भारत, इंडोनशिया, और कोरिया के संदर्भ में क्रमशः 1981, 1996, 1990 और 1977 के रूप में परिभाषित किया गया है।
प्रति व्यक्ति आय 2000 में अमरीकी डालर के अनुसार सकल घरेलू उत्पाद प्रति व्यक्ति द्वारा मापी गयी है।

चित्र 2.4: विश्व व्यापार में हिस्सा-वर्ष टेकऑफ से

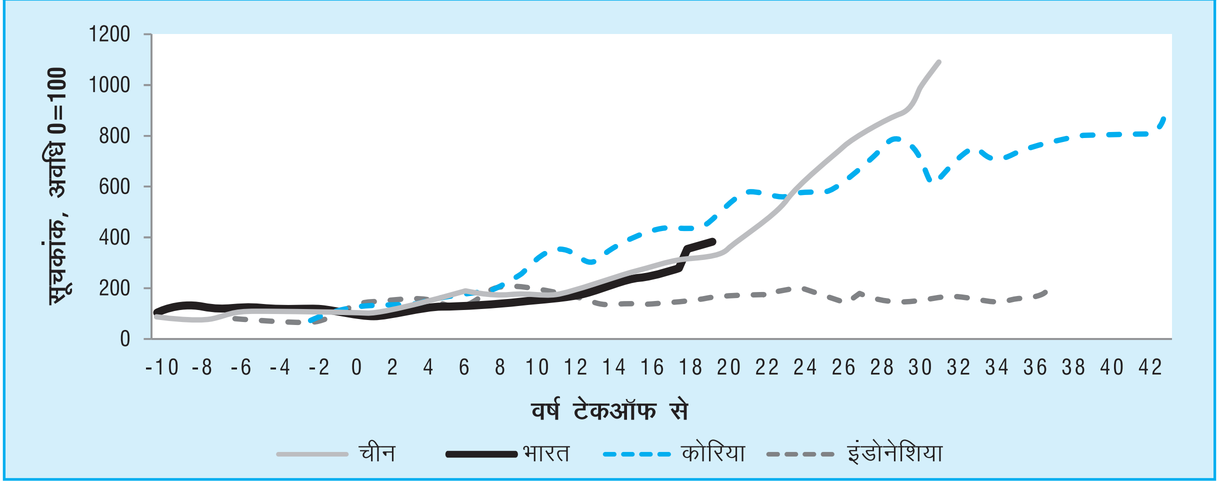

स्रोत: विश्व बैंक (2012) और लेखक की गणना

टिप्पणी: आरंभिक वर्ष को चीन, भारत, इंडोनशिया, और कोरिया के संदर्भ में क्रमशः 1979, 1991, 1973 और 1967 के रूप में परिभाषित किया गया है।
विश्व व्यापार में हिस्सेदारी की माप विश्व व्यापार के अनुपात के रूप में वस्तुओं और सेवाओं के संबंध में देश के निर्यात और आयात के योग के रूप में की गई है।

विकास के स्रोत

2.7 भारत में विकास के स्रोत क्या हैं तथा तेजी से विकसित हो रहे अन्य एशियाई देशों के साथ उसकी तुलना किस प्रकार से की जा सकती है? प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि श्रमिक उत्पादकता (जो कि औसत श्रमिकों का उत्पादन होता है) में वृद्धि, आबादी की कामकाजी आयु (थोड़े से वे लोग जो किसी भी जनसंख्या में विशेष तौर पर आधारभूत आयु समूह होते हैं तथा जिनका उत्पादन अधिकतम होता है) में वृद्धि, जो जाहिर तौर पर कामकाज बांटते फिरते हैं किन्तु उनमें से वास्तव में कितने लोग काम कर सकते हैं इन दोनों धड़ों के बीच अन्तर (श्रमिक बल भागीदारी दर) के विकास और काम की तलाश करने वाले लोग जो वास्तव में इसे हासिल कर चुके हों (रोजगार दर) के विकास द्वारा चालित होती है। क्योंकि विकासशील देशों के लिए सही-सही रोजगार आंकड़ा जुटा पाना मुश्किल होता है। अत: अध्ययन विकास के साधन विश्लेषण में रोजगार दर को विशेषतया नजरअंदाज करते हैं।

2.8 प्रस्थान बिंदु (चित्र 2.5 देखें) के 20 वर्षों के दौरान प्रति व्यक्ति आय विकास का विश्लेषण यह बताता है कि पूरे देश में प्रति व्यक्ति आय में ज्यादातर वृद्धि मुख्यत: श्रम उत्पादकता से आई है। दिलचस्प बात है कि कोरिया के अलावा श्रमिक बल सहभागिता और औसत वार्षिक आधार पर गिरती रही है इसलिए यह विकास से ॠणात्मक रही है। अंतत: वर्षात आयु जनसंख्या के अंश में वृद्धि विकास में किंचित अल्प वृद्धि प्रतीत होती है इसलिए कार्यरत आयु जनसंख्या में वृद्धि ही वह शक्ति है जिसे हम जनसाख्यिकीय भाज्यता कहते हैं बावजूद इस तथ्य के कि यह विकास में बहुत थोड़ी हिस्सेदारी (भारत में 1991 से 20 वर्षों के लिए औसतन 0.5 प्रतिशत) ही बंटाता है यह भी एक पहेली जैसा है।

2.9 इस पहेली को खोलना भी काफी आसान है। कार्यरत लोगों के धड़े में इजाफा ही संभवत: जनसंख्यकीय भाज्य का अहम पहलू नहीं है। इसके अलावा जनसांख्यिकीय भाज्यता के प्रभावों को श्रमिक उत्पादकता जो कि प्रति कामगर द्वारा योजित ज्यादा वास्तविक पूंजी से जनित होता है (और आगे चलकर बृहत्तर बचत तथा निवेश से परिवर्तित होता है) के जरिए ज्यादा प्रतिव्यक्ति मानव संसाधन कार्यकर्ता (जो उच्च शिक्षा से आता है क्योंकि छोटे परिवार प्रति बच्चे की शिक्षा पर अपेक्षाकृत ज्यादा निवेश करते हैं) और अधिकतर समग्र कारक उत्पादकता (टीएफपी) के जरिए चैनलीकृत किया जाता है। टीएफपी उपायों में किया जाने वाला कार्य कितना उत्पादक व कितना तत्वपरक था। इसके प्रयुक्त प्रौद्योगिकी किए गए कार्य की दक्षता तथा कौशल उसमें अन्तर्निहित ज्ञान संगठनात्मक क्षमताएं तथा पारस्परिक भरोसा और विश्वास जैसे अमापनीय पहलू भी शामिल हैं।

2.10 इसलिए यह देखना उपयोगी है कि इनमें से प्रत्येक तत्व किस तरह से श्रम उत्पादकता में अपनी हिस्सेदारी बंटाता है। जैसाकि चित्र 2.6 में दर्शाया गया है कि तेजी से विकास कर रहे एशियाइयों के लिए श्रम उत्पादकता में वृद्धि के लिए बेहतर मानवीय पूंजी कारक नगण्य सा अंशदान ही अदा करता है। इसके अलावा प्रति कामगार प्रयुक्त पूंजी तथा टीएफपी में वृद्धि ही दो सबसे बड़े अंशदाता हैं। इंडोनेशिया और कोरिया पूंजी निर्भरता पर आधारित देश हैं जबकि भारत में इन देशों की तुलना में ज्यादा पूंजीगत विकास नहीं है लेकिन टीएफपी में भारत ज्यादा मजबूत स्थिति रखता है। अंतत: चीन दोनों ही क्षेत्रों में हमसे आगे है क्योंकि वहां लगाई गई पूंजी तथा टीएफपी दोनों ही क्षेत्रों में पर्याप्त वृद्धि है।

2.11 जैसाकि चित्र 2.7 में दर्शाया गया है। दिलचस्प बात यह है कि आरम्भ (टेकऑफ) वर्ष के बाद के 20 वर्षों के बाद जब भारत इस परिदृश्य में प्रवेश कर रहा था। इंडोनेशिया और कोरिया दोनों के लिए टीएफपी यह मंद पड़ रही थी किन्तु चीन के लिए यह वृद्धिरत थी। दिलचस्प यह भी है कि टीएफपी इंडोनेशिया के लिए विचारणीय रूप से लुढक गई थी तथा कोरिया के लिए भी यह अधिक नहीं थी तथापि चीन के लिए यह बढ़ी हुई थी।

चित्र 2.5: प्रति व्यक्ति उत्पादन में विकास के स्रोत-आरम्भ से पहले 20 वर्ष

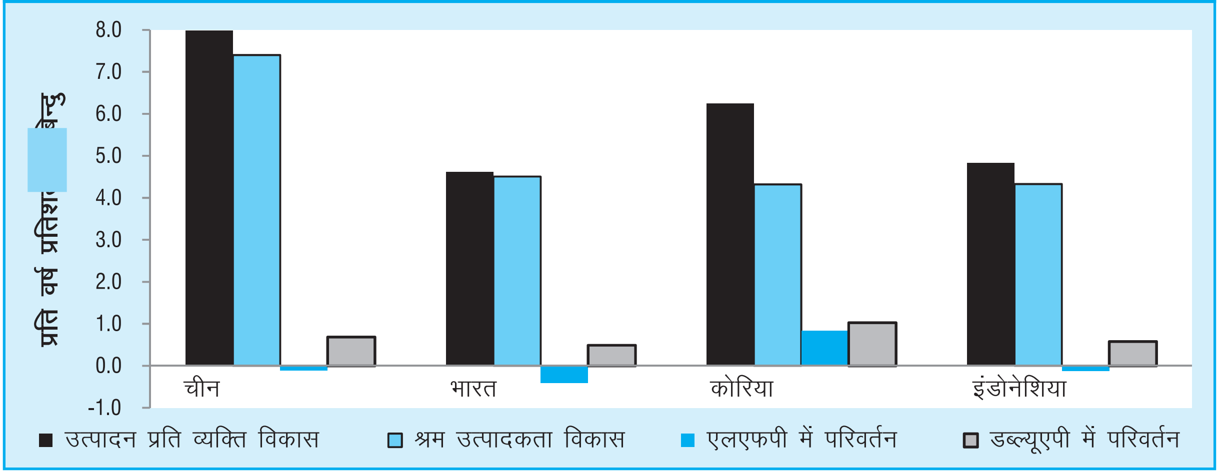

स्रोत: लेखक का परिकलन

टिप्पणी: आरंभिक वर्ष की परिभाषा चीन, भारत, इंडोनेशिया और कोरिया के संबंध में क्रमश: 1989, 1991, 1973 और 1967 के रूप में की गई है।

चित्र 2.6: श्रमिक उत्पादकता में विकास के स्रोत:आरंभ से पहले 20 वर्ष

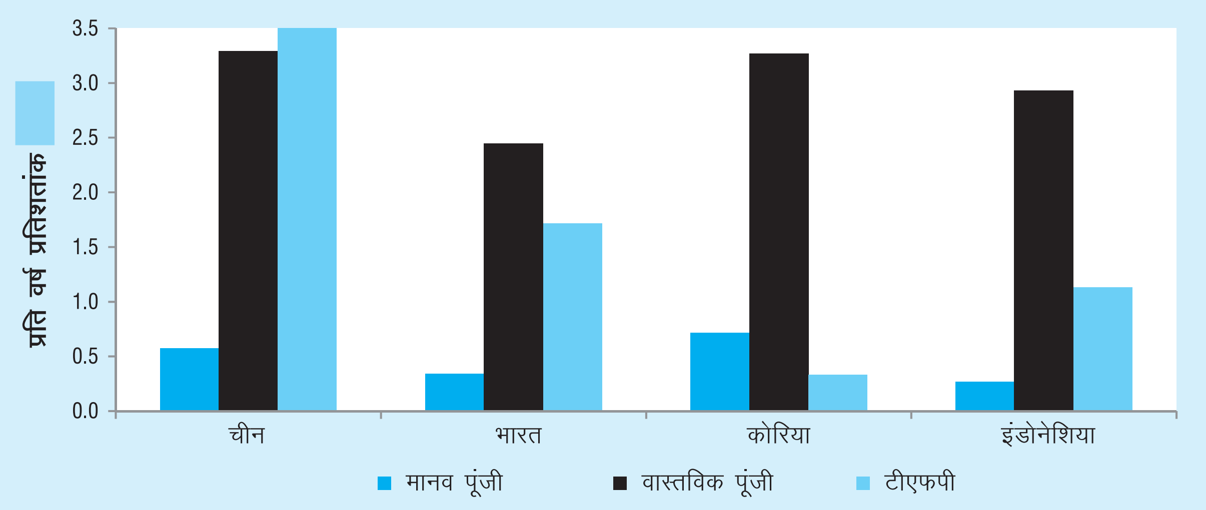

स्रोत: लेखक का परिकलन एक मानक वृद्धि अपघटन क्रियाकलाप के आधार पर है। पूंजी भंडार से संबंधित आंकड़े नहरु और धरेस्वर (1993) से साश्वत मांग विधि तथा पांच प्रतिशत ह्रास दर का प्रयोग करके प्राप्त किए गए हैं। श्रम भागीदारी 0.65 मानी गयी है। मानव पूंजी विद्यालयी शिक्षा के औसत वर्षों से संबंधित है जिसके संबंध में यह माना गया है कि विद्यालयों में विद्यार्थियों का 7 प्रतिशत प्रवेश होता है। (बॉसवर्थ तथा कोलिंस 2003 के अनुसार)

टिप्पणी: आरंभिक वर्ष की परिभाषा चीन, भारत, इंडोनेशिया और कोरिया के संबंध में क्रमश: 1989, 1991, 1973 और 1967 के रूप में की गई है।

चित्र 2.7: श्रमिक उत्पादकता में विकास के स्रोत-पहले 20 वर्ष से आगे

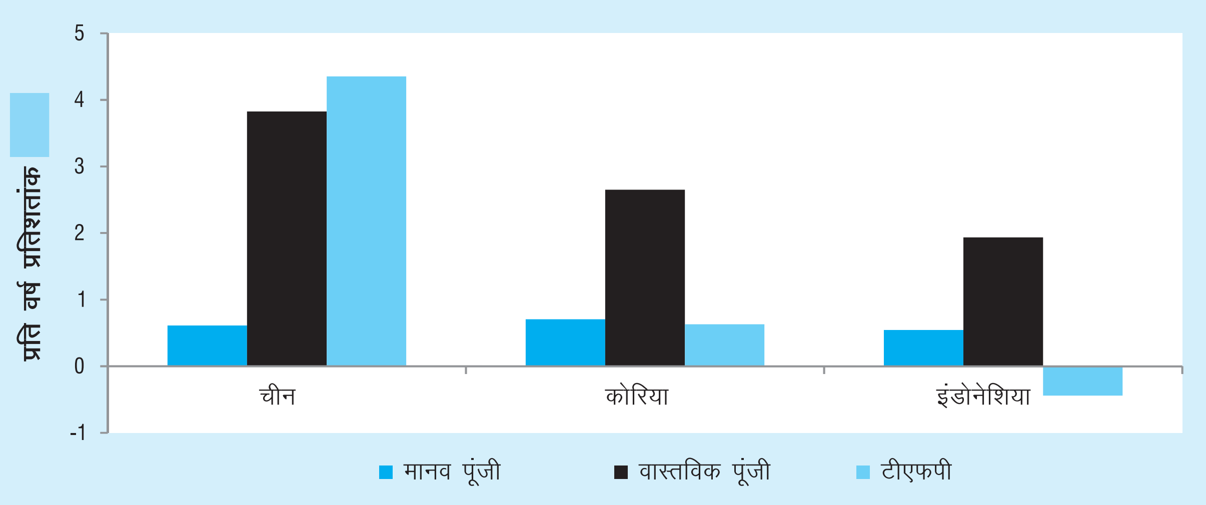

स्रोत: लेखक का परिकलन एक मानक वृद्धि अपघटन क्रियाकलाप के आधार पर है। पूंजी भंडार से संबंधित आंकड़े नहरु और धरेस्वर (1993) से साश्वत मांग विधि तथा पांच प्रतिशत ह्रास दर का प्रयोग करके प्राप्त किए गए हैं। श्रम भागीदारी 0.65 मानी गयी है। मानव पूंजी विद्यालयी शिक्षा के औसत वर्षों से संबंधित है जिसके संबंध में यह माना गया है कि विद्यालयों में विद्यार्थियों का 7 प्रतिशत प्रवेश होता है। (बॉसवर्थ तथा कोलिंस 2003 के अनुसार)

टिप्पणी: आरंभिक वर्ष की परिभाषा चीन, भारत, इंडोनेशिया और कोरिया के संबंध में क्रमश: 1989, 1991, 1973 और 1967 के रूप में की गई है।

2.12 संक्षेप में टेकऑफ के बाद दूसरे दशक के परवर्ती वर्षों में अविरल तथा सुदृढ़ चीनी विकास की शुरुआत नौकरियों की महत्वपूर्ण उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि तथा उसी प्रकार समुन्नत निवेश दर का सुमेलित परिणाम रही है। यदि भारत भी उसी मार्ग का अनुसरण करता तो उसे बचतों और निवेश, जिसका अनुसरण जनसांख्यिकीय अन्तरण से होगा। दोनों ही क्षेत्रों में वृद्धि तथा विकास करने की जरूरत होगी। किन्तु इसे नौकरियों की मूलभूत उत्पादकता में वृद्धि भी करनी होगी और यही टीएफपी का निहितार्थ है।

वृद्धिमान श्रम उत्पादकता और क्षेत्रवार पुनराबंटन

2.13 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष (आईएमएफ) का कहना है कि टीएफटी में चीन की महत्वपूर्ण वृद्धि का मुख्य कारण कृषि जैसे निम्न उत्पादकता वाले क्षेत्रों से श्रमिकों का विनिर्माण व मैन्युफैक्चरिंग जैसे उच्च उत्पादकता वाले क्षेत्रों की तरफ लौटना रहा है। अब भारत क्या करे? भारत में टीएफटी किस तरह से बढ़ाई जा सकती है। यह देखने के लिए हमें चित्र 2.8 देखना होगा। वर्ष 2009 में

चित्र 2.8: क्षेत्रों में रोजगार हिस्सेदारी तथा श्रम उत्पादकता में अंतर - 2009-10

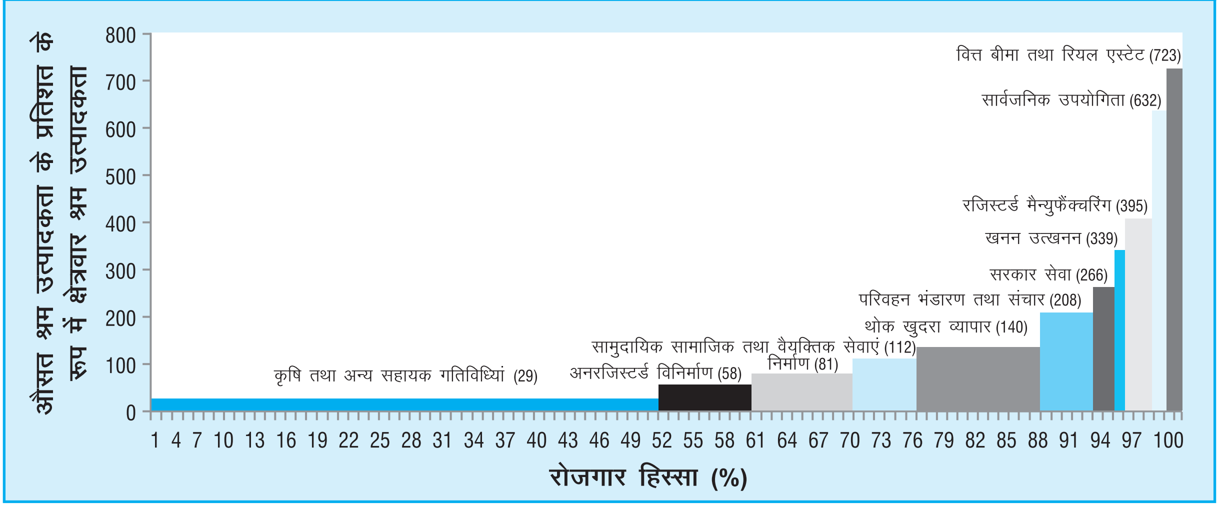

स्रोत: हसन और अन्य (2012)

टिप्पणी: यूएनआरईजी: अपंजीकृत विनिर्माण क्षेत्र, सीओएनएसटी: निर्माण, सीएसपी: समुदाय, समाज तथा व्यक्तिक सेवाएं, डब्ल्यूआरटी: थोक-खुदरा व्यापार और रेस्तरा-होटल, टीएससी: परिवहन, भंडारण, और संचार, जीओवी: सरकारी सेवाएं, एमआईएन: खान तथा खन्न, आरईजीएमएफजी: पंजीकृत विनिर्माण क्षेत्र, पीयु: जनउपयोगी सेवाएं, एफआईआरई: वित्त, बिमा तथा रियल एस्टेट।

श्रम उत्पादकता के द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था के ग्यारह क्षेत्र व्यवस्थित किए गए थे। आयात की ऊंचाई, क्षेत्र की उत्पादकता को दर्शाती है जबकि उसकी चौड़ाई इसके द्वारा नियुक्त श्रमिक बल की हिस्सेदारी को दर्शाती है। कृषि की उत्पादकता काफी कम है किन्तु यह कुल श्रमिक बल की आधी संख्या को खुद से जोड़े हुए है। इसके विपरीत अर्थव्यवस्था में वित्तीय तथा फुटकर सेवाएं सबसे अधिक उत्पादक क्षेत्र है लेकिन इनमें देश की कुल उपलब्ध श्रमिक बल का एक छोटा सा हिस्सा ही शामिल है।

2.14 ज्यादातर आबादी कृषि पर ही निर्भर बनी हुई है। इसका एक अहम कारण यह भी है कि सरकार ने कृषि में उत्पादकता सुधार पर बहुत ध्यान दिया हुआ है, यहां तक कि किसानों तथा सजदूरों दोनों की ही आय बढ़ाने के लिए सरकार द्वारा कई प्रयास किए जा रहे हैं। कृषि उत्पादकता में संभावना काफी कम है तो इसका कारण यह है कि कई कृषि मजदूर संबद्ध नियत और सीमित उत्पादक क्षेत्रों तथा भूमि तथा पूंजी (सिंचाई, प्रौद्योगिकी, टैक्टरों, मशीनरी तथा इस जैसे अन्य से जुड़े रहते हैं। इसलिए श्रम उत्पादकता बढ़ाने का एक तरीका यह भी है कि कृषि सहित सभी क्षेत्रों में निवेश में इजाफा किया जाए। और इस प्रकार प्रति नियुक्त मजदूर पूंजी में भी वृद्धि होगी)।

2.15 रुचिकर श्रम उत्पादकता का समान रूप से प्रभावी तरीका टीएफपी को बढ़ाने के लिए सहायक हो सकता है। उन आश्रितों में से कुछ आश्रितों को कम उत्पादनकारी कृषि से उद्योग और सेवाओं में अपेक्षाकृत अधिक उत्पादनकारी रोजगार में भेजकर। ऐसा करने की अनुमति उन लोगों को भी दी जाएगी जो बड़े खेतों में बड़े भूखंडों पर खेती करते हैं और श्रम उत्पादकता को बेहतर करने के लिए और अधिक वाणिज्यिक उपकरणों का इस्तेमाल करते हैं। स्पष्टत: प्रति कर्मकारी पूंजी को बनाए रखने के लिए कर्मचारी प्राप्तकर्ता क्षेत्रों में और अधिक निवेश करने की जरूरत होगी लेकिन इन क्षेत्रों में टीएफटी का अधिक होने का मतलब प्रति व्यक्ति अधिक उत्पादन होगा। कम उत्पादकता वाले क्षेत्रों से अधिक उत्पादकता वाले क्षेत्रों में कामगों को पुन: आवंटन को जारी रखे से टीएफपी बढ़ रहा है और इस तरह विकास की गाड़ी तेजी से चल रही है।

2.16 श्रमिकों के पुनराबंटन की दिशा में भारत में क्या-क्या किया है: शुरुआत से हमने कई वर्षों तक रोजगार और मूल्यवर्धित हिस्सेदारी के क्षेत्रवार अंश सृजित किए हैं। पहले कृषि को ही लें, अन्य कई एशियाई देशों की तुलना में भारत की कृषि में हिस्सेदारी बहुत ज्यादा है लेकिन शायद इसकी वजह यही है कि टेकऑफ से इसे बहुत वर्ष नहीं मिले हैं: चित्र 2.9क तथा 2.9ख बताते हैं कि भारत में कृषि में रोजगार हिस्सा तथा मूल्यवर्धित अंश अन्य एशियाई देशों की भांति नीचे आता जा रहा है (यद्यपि जबकि हमारे पास आंकड़े उपलब्ध हैं उनसे यह स्पष्ट होता है कि कोरिया में आबादी का एक छोटा सा हिस्सा ही कृषि कार्य में लगा हुआ है) भविष्य की बात करें तो यदि हम चीन या इंडोनेशिया का मार्ग अपनाते है तो इसके लिए हमें अगले 10 वर्षो में कृषि से समग्र रोजगार की हिस्सेदारी के 10 फीसदी अंश को हटाना होगा तथा कृषि में रोजगार की हिस्सेदारी के शेयर को लगभग 40 फीसदी तक नीचे लाना होगा।

---

[2] जबकि इस भाग में टेकऑफ से एशियाई देशों के अनुभव पर फोकस है अन्य रोचक उदाहरण अफ्रीका से है मारिशियन मिरेकल का है जहां स्पष्ट क्षेत्रक खिसकाव से उच्च वृद्धि प्रेरित हुई है (बाक्स 2.6)।

चित्र 2.9 क: कृषि में रोजगार का हिस्सा - वर्ष टेकऑफ से

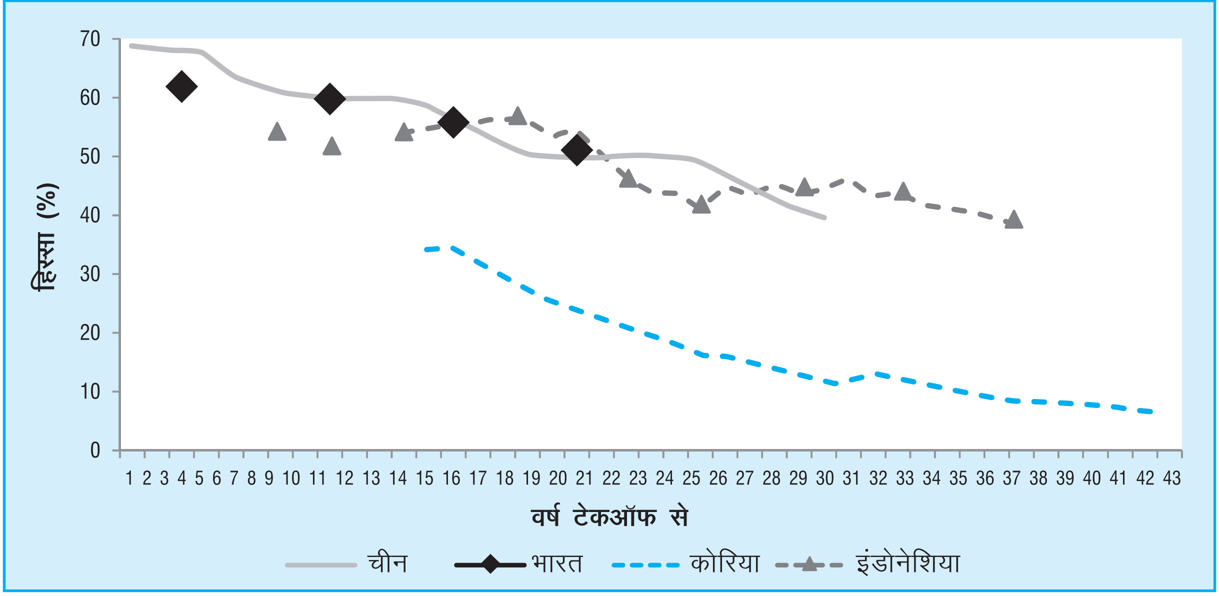

स्रोत: विश्व बैंक (2012) और लेखक का परिकलन

टिप्पणी: आरंभिक वर्ष की परिभाषा चीन, भारत, इंडोनेशिया और कोरिया के संबंध में क्रमश: 1989, 1991, 1973 और 1967 के रूप में की गई है।

चित्र 2.9 ख: कृषि में मूल्यवर्धन का हिस्सा - वर्ष टेकऑफ से

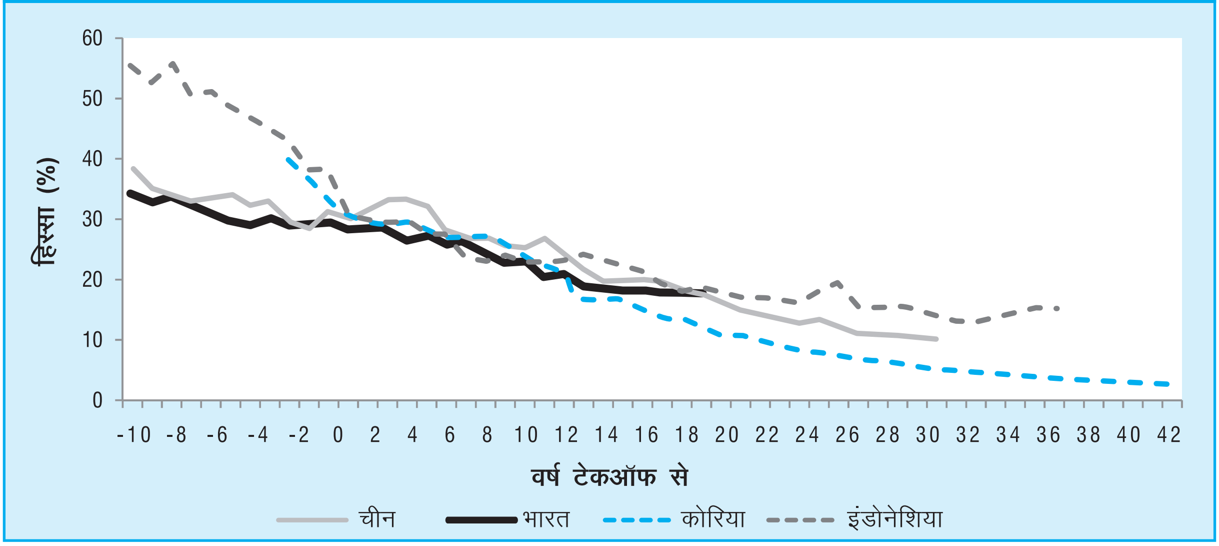

स्रोत: विश्व बैंक (2012) और लेखक का परिकलन

टिप्पणी: आरंभिक वर्ष की परिभाषा चीन, भारत, इंडोनेशिया और कोरिया के संबंध में क्रमश: 1989, 1991, 1973 और 1967 के रूप में की गई है।

2.17 उद्योग की तरफ चलें तो वहां हम बृहतर अन्तर पाते हैं। (चित्र 2.10क तथा 2.10ख देखें) यद्यपि इस हैसियत स्थिति के समान एशियाई अर्थव्यवस्था की ही तरह भारत में उद्योग में रोजगार सृजन की हिस्सेदारी बढ़ रही है। (कोरिया इसमें अपवाद है)। तथापि हैरतंगेज तथ्य यह है कि उद्योग के अंश की तुलना के बराबर नहीं बढ़ रही है हाल ही में यह तेजी से नीचे आई है। इसकी तुलना चीन से जहां उद्योग में मूल्यवृद्धि हमेशा इसके रोजगार के अंश से अपेक्षाकृत अधिक रही है अथवा इंडोनेशिया व कोरिया, जहां रोजगार के अंश में वृद्धि के साथ-2 मूल्य वृद्धि में बढ़ोतरी होती है (उदाहरणार्थ इंडोनेशिया) अथवा गिरती (उदाहरणार्थ कोरिया) से करें। चिंताजनक निष्कर्ष यह है कि भारत में जबकि उद्योग में वर्धन हो रहा है, नौकरियों की उत्पादकता उच्च नहीं रही। आंशिक तौर पर, ऐसा इस कारण है कि जिन आंकड़ों का हम निपटान करते हैं वे उद्योग के हिस्से के तौर पर में निम्न उत्पादकता प्रदान करते हैं और उद्योग में विस्तारित निर्माण क्षेत्र ने बहुत सी नौकरियां सृजित की है। तथापि, एक अतिरिक्त समस्या यह है कि उद्योग में कुछ नौकरियां औपचारिक हैं अथवा इन्हें अपेक्षाकृत अधिक उत्पादक बड़ी फर्मों द्वारा सृजित किया जा रहा है (नीचे चर्चा देखें)

चित्र 2.10 क: उद्योग में रोजगार का हिस्सा - वर्ष टेकऑफ से

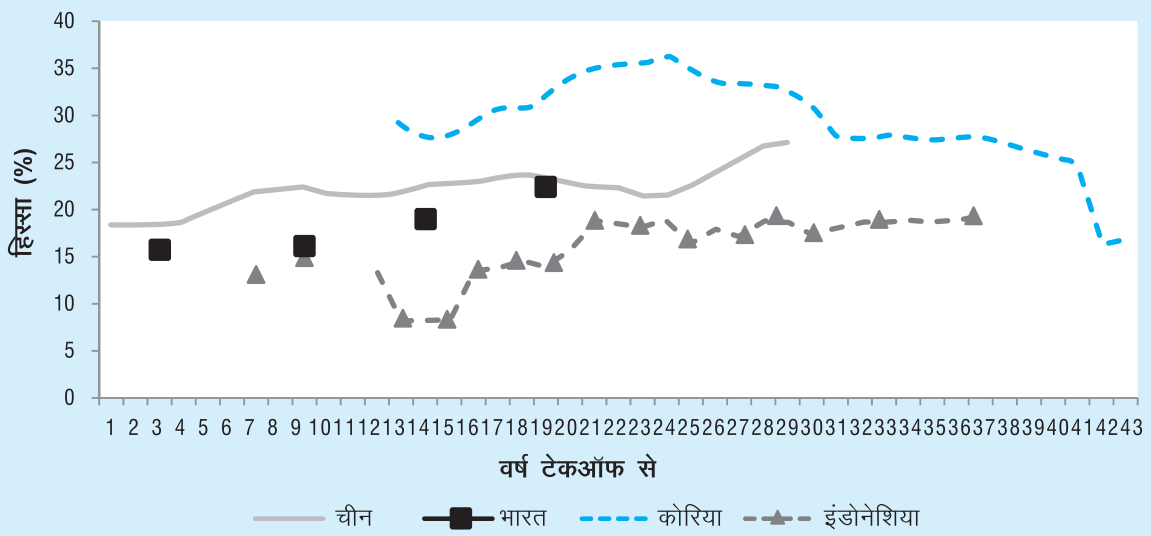

***स्रोत:* विश्व बैंक (2012) और लेखक का परिकलन**

***टिप्पणी:* आरंभिक वर्ष की परिभाषा चीन, भारत, इंडोनेशिया और कोरिया के संबंध में क्रमशः 1989, 1991, 1973 और 1967 के रूप में की गई है।**

चित्र 2.10 ख: उद्योग में मूल्यवर्धन का हिस्सा - वर्ष टेकऑफ से

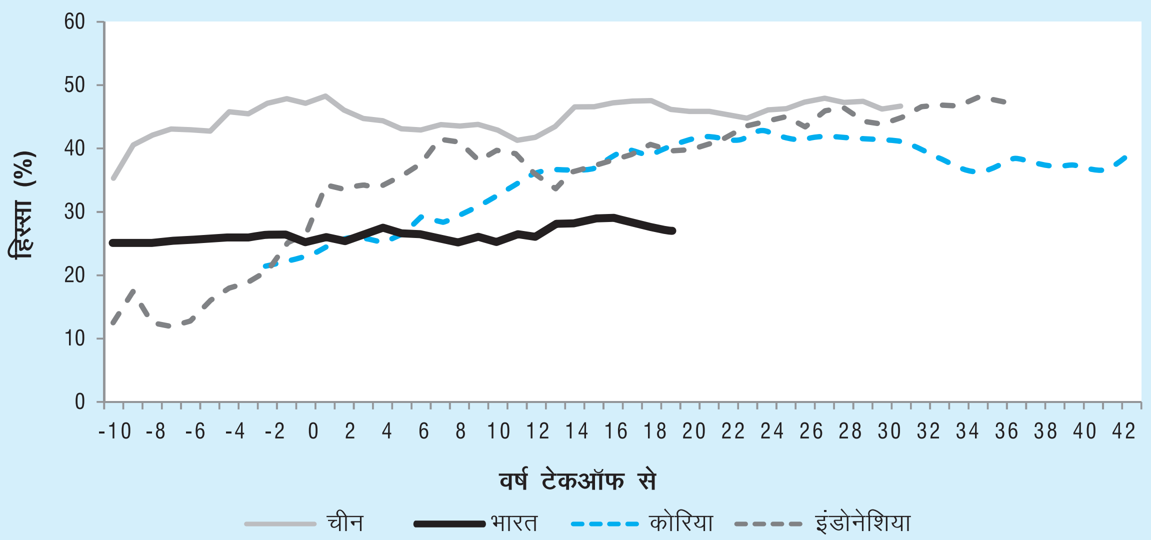

***स्रोत:* विश्व बैंक (2012) और लेखक का परिकलन**

***टिप्पणी:* आरंभिक वर्ष की परिभाषा चीन, भारत, इंडोनेशिया और कोरिया के संबंध में क्रमशः 1989, 1991, 1973 और 1967 के रूप में की गई है।**

2.18 अंत में चित्र 2.11(क) तथा 2.11(ख) पर विचार करें। इसमें भारत की स्थिति मिली जुली है। हालांकि सेवाओं में रोजगार का हिस्सा धीरे-धीरे बढ़ रहा है किन्तु मूल्यवर्धित की हिस्सेदारी अन्य एशियाई देशों की तुलना में महत्वपूर्ण ढंग से ऊंची बनी हुई है। वास्तव में प्रारम्भ (टेकऑफ) से समान समयावधि पर सेवाओं में रोजगार हिस्सेदारी समान बनी हुई है तथापि में रोजगार हिस्सेदारी समान बनी हुई है तथापि मूल्यवर्धित में इनकी भागीदारी काफी कम है। भारत की व्यापक सेवाओं की हिस्सेदारी में सबसे बड़ा तथ्य यह है कि आरम्भ (टेकऑफ) के समय पर शुरू की गई सेवाओं की हिस्सेदारी बहुत ज्यादा होने के साथ ही उसका विकास भी सुदृढ़ और मजबूत था।

2.19 विविध देशों में उद्योगों की यह क्षेत्र-वार तस्वीरें कई महत्वपूर्ण संदेश देती हैं:

- पारम्परिक समाज के विपरीत तथ्य यह है कि विकास की सादृश्य अवस्थाओं पर स्थित अन्य एशियाई देशों की तुलना में भारत में संलग्न व्यक्ति बहुत ज्यादा नहीं है कृषि पर निर्भर कामगारों की यह हिस्सेदारी भी समान दर से धीरे-धीरे कम हो रही है।

चित्र 2.11 क: सेवाओं में रोजगार का हिस्सा - वर्ष टेकऑफ से

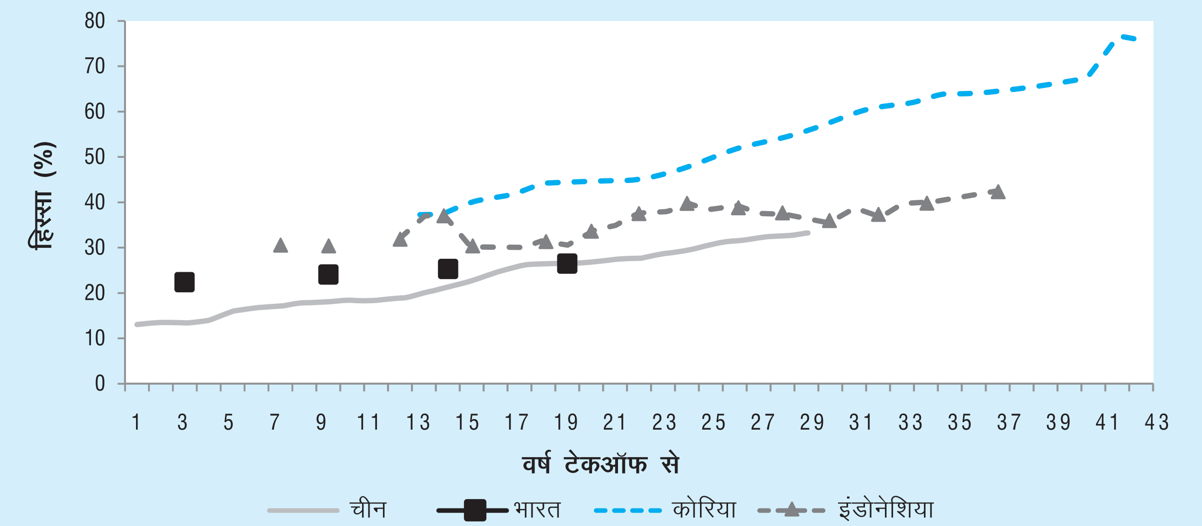

स्रोत: विश्व बैंक (2012) और लेखक का परिकलन

टिप्पणी: आरंभिक वर्ष की परिभाषा चीन, भारत, इंडोनेशिया और कोरिया के संबंध में क्रमश: 1989, 1991, 1973 और 1967 के रूप में की गई है।

चित्र 2.11ख: सेवाओं में मूल्यवर्धन हिस्सा - वर्ष टेकऑफ से

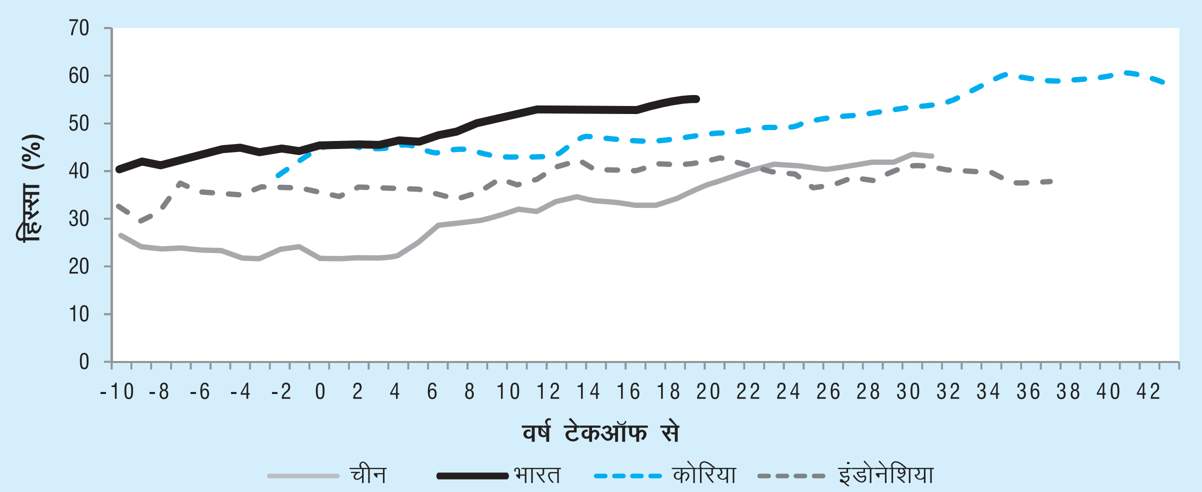

स्रोत: विश्व बैंक (2012) और लेखक का परिकलन

टिप्पणी: आरंभिक वर्ष की परिभाषा चीन, भारत, इंडोनेशिया और कोरिया के संबंध में क्रमश: 1989, 1991, 1973 और 1967 के रूप में की गई है।

- तथापि सीमित होने से यह बढ़ सकती है बशर्ते भारत अन्य देशों का अनुगमन करे।
- एक समस्या यह है कि हालांकि उद्योग नौकरियां सृजित कर रहे हैं, तथापि ये सापेक्षिक रूप से निम्न उत्पादकता परक नौकरियां हैं। परिणामस्वरूप भारत में प्रति व्यक्ति आय उतनी लाभकारी नहीं है जितनी कि कृषि से अन्य क्षेत्रों में कामगारों के प्रवासन से अन्य एशियाई देशों में हैं।
- दूसरी एक समस्या यह है उच्च-उत्पादकता युक्त सेवा क्षेत्र मूल्यवर्धित थे इसके विकास के अनुरूप रोजगार सृजित करने में सक्षम नहीं है।

कितनी नौकरियां घटेगी?

2.20 यदि हम अन्य एशियाई देशों के मार्ग पर चले तो अस्पष्टता यह ज्ञात होता है कि कृषि से बाहर कामगारों के लिए एक संक्रमण का दौर आ रहा है। इसके अतिरिक्त जनसंख्या में हो रही वृद्धि से और अधिक संख्या में कामकार श्रमबल में शामिल होंगे। आगामी दशक के दौरान उद्योग और सेवा क्षेत्र में कितने कामगार खप सकेंगे? यदि वे विगत के अनुरूप नौकरियों का सृजन करना जारी रखे तो इन क्षेत्रों में कितने कामगारों का आमेलन हो सकेगा? क्या जैसा कि कुछ लोगों का कहना है, जनसंख्या में हो रही वृद्धि जनसंख्या अभिशाप में बदल जाएगी?

2.21 इन सभी प्रश्नों का उत्तर देने के लिए हमने विश्व विकास सूचकों (डब्ल्यूडीआई) तथा संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या प्रभाग से प्राप्त

सारणी 2.1 : कितनी नौकरियां कम होंगी? वैकल्पिक परिदृश्य

	2000	2010	2020		
			[I] आधार स्तर	[II] उच्च श्रम बल भागीदारी	[III] निम्न बेरोजगारी दर
कृषि में रोजगार का हिस्सा (%)	60	51	40	40	40
उद्योग में रोजगार का हिस्सा (%)	16	22			
सेवा में रोजगार का हिस्सा (%)	24	27			
श्रम बल भागदीरी दर (%)	60	56	56	**58**	56
जनसंख्या (15+) (मिलियन में)	688	850	1,010	1,010	1,010
श्रम बल (मिलियन में)	409	473	561	586	561
रोजगार (मिलियम में)	392	456	541	565	552
रोजगार/श्रम बाल (% में)	96	96	96	96	**98**
कृषि में रोजगार (मिलियन में)	234	233	217	226	221
उद्योग में रोजगार (मिलियन में)	63	102	165	165	165
सेवा में रोजगार (मिलियन में)	94	121	154	154	154
नौकरीयों में कमी (मिलियन में)			**2.8**	**16.7**	**11.8**

स्रोत **: विश्व विकास सूचक, संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या प्रभाग**

टिप्पणी **: विश्व विकास सूचक में एलएफपी दर की परिभाषा श्रम बल/जनसंख्या 15 + के रूप में दी गई है।**

किए आंकड़ों का उपयोग करके कुछ सरल दृष्टान्त प्रस्तुत किए। अधोरेखा में (सारणी 2.1, कालम I) हमने यह माना है कि 2010-20 के दौरान उद्योग तथा सेवा क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में पिछले दशक के दौरान हुई वृद्धि के अनुरूप ही वृद्धि होगी। वर्ष 2020 तक कृषि में रोजगार की हिस्सेदारी घटकर 40% हो जाएगी (चीन के 2010 के स्तर पर)। कार्यशील आयुवर्ग में जनसंख्या वृद्धि संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या प्रभाग के अनुमानों के अनुसार होगी। हमारा यह मानना है कि श्रमबल भागीदारी दर तथा बेरोजगारी दर अपरिवर्तित रहेगी और 2010 के स्तरों पर बनी रहेगी। इस आधार परिदृश्य के अंतर्गत वर्ष 2020 तक देश में 2.8 मिलियन नौकरियां घटेगी। इसे ध्यान में रखते हुए यह ज्ञात होता है कि यह संख्या श्रमबल का मात्र 0.5% होगी। हालांकि नौकरियों में कोई भी कमी समस्या उत्पादक है किन्तु तत्काल किसी खतरे की संभावना नजर नहीं आती।

2.22 इस अनुमान में अनेक धारणाएं समाहित है। उदाहरण के लिए, श्रमबल की भागीदारी 56% की दर पर स्थिर रखी गयी है जो 2010 के आंकड़ों के अनुरूप हैं। किन्तु यदि काफी अधिक संख्या में महिलाएं श्रमबल में प्रवेश कर जायं और 2000 से चला आ रहा गिरावट का रूझान उलट जाए तो वर्ष 2020 तक श्रमबल भागीदारी दर संभवत: बढ़कर 58% हो जाएगी। यह वर्ष 2000 की 60% दर की तुलना में कम है किन्तु इस अनुदार कल्पना से भी घट रही नौकरियों की संख्या बढ़कर 16.7 मिलियन होती हैं (देखें सारणी 2.1 कालम II)। इस उच्च प्रत्याशित रोजगार परिदृश्य में वर्ष 2020 में घट गयी नौकरियों की संख्या 11.8 मिलियन या आधार परिदृश्य का चार गुना होने का अनुमान है।

2.23 अभी-अभी किया गया बेक-आफ-द-ऑनलप परिकलन अधिक सतर्क अन्वेषण की दृष्टि से मात्र एक आरम्भिक बिन्दु के रूप में माना जाना चाहिए। जबकि मौजूदा रूझानों की एक सरल व्याख्या से यह ज्ञात होता है कि भारत कृषि क्षेत्र में कार्य कर मौजूदा श्रमिकों को आमेलित कर सकता है चाहे इनकी संख्या बढ़कर चीन में कृषि क्षेत्र में काम कर रहे कामगारों की संख्या के बराबर ही क्यों न हो जाए, इस संबंध में किसी भी छूट की कोई गुंजाइश नहीं है। अनुमानों में एक छोटा-सा बदलाव लाखों मिलियन अतिरिक्त नौकरियों का सृजन कर सकता है। अत: हालांकि नीति निर्माता नौकरियों को अधिक उत्पादक बनाने पर ध्यान देते हैं, भारत को भी मौजूदा रूझानों से ज्ञात संख्या तुलना में अधिक संख्या की आवश्यकता है ताकि हमारे पास पर्याप्त संख्या में सुरक्षित कार्यबल विद्यमान हो।

व्यापार में अधिक उत्पादक नौकरियों का सृजन क्यों नहीं हो रहा है?

2.24 भारत में अनेक छोटे प्रतिष्ठान छोटे तथा अनुत्पादक ही बने रहते हैं तथा उन्हें सम्मानपूर्वक विघटित होने नहीं दिया जाता। लाभ कमाने वाले अनेक बड़े प्रतिष्ठान अस्थायी तौर पर ठेकेदार श्रमिकों और मशीनों पर विश्वास करते हैं न कि दीर्घावधिक नौकरियों के लिए कामगारों को प्रशिक्षित करने पर। इस अनुच्छेद के दो भाग हैं- पहले भाग में हम छोटे व्यवसायों के गठन तथा उनकी वृद्धि के समक्ष आने वाली बाधाओं की जांच करेंगे। दूसरे भाग में हम श्रम की स्थिति की जांच करेंगे तथा यह भी जानेंगे कि बड़े आकार के औपचारिक व्यवसायों को प्रचालित करना क्यों

चित्र 2.12: रजिस्टर्ड एमएसएमई में लघु उद्यमों का प्रभुत्व

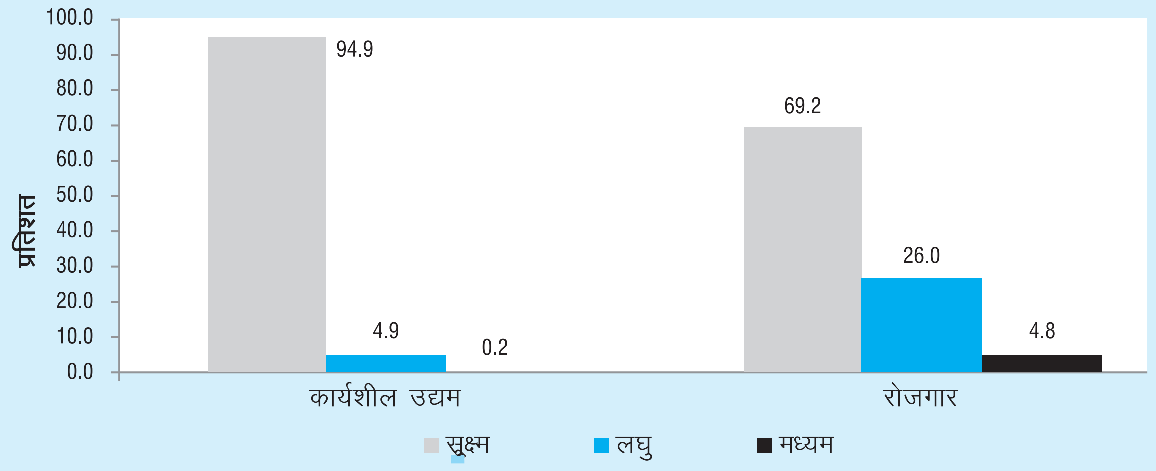

स्रोतः सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम उद्यमों की चौथी अखिल भारतीय गणना, 2006-07 : पंजीकृत क्षेत्र; योजना आयोग, 12वीं पंचवर्षीय योजना का प्रारूप।

चुनौतिपूर्ण होता है। हम ''व्यवसाय'' शब्द का प्रयोग सोच-समझ कर कर रहे हैं क्योंकि निर्माण कार्य, विनिर्माण, सेवा के क्षेत्र में इसी प्रकार की समस्याएं हो सकती हैं हालांकि उनकी इयत्ता में अन्तर हो सकता है।

व्यवसाय के स्थापित होने और उसकी वृद्धि होने के मार्ग की बाधाएं

2.25 एक समूह के रूप में यह अनुमान लगाया जाता है कि सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योग (एमएसएमई)[3] में देश[4] भर में फैले 36 मिलियन यूनिटों में 81 मिलियन व्यक्ति काम कर रहे हैं। यद्यपि इनमें से अनेक प्रतिष्ठान विकसित होन में अक्षम हैं और बन्द होने की कगार पर हैं सीह तथा लेनोवो द्वारा किए गए एक अध्ययन (2011) से यह सूचित होता है कि अमेरिका में जिन छोटे प्रतिष्ठानों का अस्तित्व बना हुआ है और जो काफी अच्छी तरह विकसित हो रहे हैं उनकी तुलना में अपना अस्तित्व कायम रखने वाले मैक्सिकों के छोटे प्रतिष्ठान धीमी गति से विकसित हो रहे हैं। जबकि अपना अस्तित्व बनाये रखने वाले भारत के छोटे प्रतिष्ठानों का आकार घट रहा है। भारत में इन प्रतिष्ठानों की उत्पादकता अपेक्षाकृत कम है। वास्तव में सूक्ष्म, लघु और मध्यम स्तर के उद्योगों के भीतर छोटे-छोटे उद्योग काफी मजबूती से जुड़े हुए हैं तथा मध्यम उद्यमों का लगभग कोई अस्तित्व मौजूद नहीं है। (देखें चित्र 2.12)। और यही सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योग क्षेत्र की वास्तविक चुनौती है जिसके कारण वे उद्यम को न केवल आरम्भ करने में बल्कि उसके विकास को जारी रखने में भी चुनौतियों का सामना कर रहे हैं और इस प्रकार वे किसी टिकाऊ नौकरी का श्रोत बनने से रह जाते हैं।

2.26 भारत में अनेक प्रतिष्ठान छोटे, अपंजीकृत और निगमित, काफी हद तक अनौपचारिक, या असंघटित क्षेत्र में बने रह जाते हैं जिसका कारण यह है कि वे विनियमों तथा करों के भुगतान से बचना चाहते हैं। ऐसे प्रतिष्ठान व्यापक रूप से अस्थायी कर्मचारियों के कौशल में वृद्धि करने के लिए निवेश करने या ऐसे पूंजीगत उपकरणों में निवेश जैसे क्रियाकलापों से बचना चाहते हैं जो उन्हें कर के घेरे में ला सकते हैं, जिसके कारण उनकी उत्पादकता कम हो जाती है। कम उत्पादकता के कारण उन्हें विकसित होने के लिए कम प्रोत्साहन प्राप्त होता है और वे परिस्थितियों के दुष्चक्र से उभरने में सक्षम नहीं हो पाते। चित्र 2.13 में इन प्रतिष्ठानों द्वारा शुरूआत के चरण में तथा साथ ही विकास के प्रत्येक स्तर पर झेली जा रही कुछ प्रमुख चुनौतियों का उल्लेख किया गया है।

विनियम

2.27 सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम उद्यमों के जीवन चक्र अर्थात इनके संस्थापन, वृद्धि तथा विघटन में विनियामक परिवेश की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है। विश्व बैंक के डूइंग बिजनेस 2013 आंकड़ों के अनुसार व्यवसाय करने में आसानी के संदर्भ में भारत का विश्व के 185 देंशों में 132वां स्थान है। जिस व्यवसाय में भारत का स्थान 173वां है उस व्यवसाय को आरम्भ करने में बारह प्रक्रियाओं को पूरा करने, 27 दिनों की समयावधि तथा प्रति व्यक्ति पूर्व स.घ.उ. के 140% प्रदत्त पूंजी की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत दक्षिण एशिया में स्थित हमारे पड़ोसी देशों के मामले में यह स्थिति औसतन 7 प्रक्रियाओं, 19 दिनों और प्रति व्यक्ति आय का 18% है।

2.28 आरम्भिक प्रक्रियाओं को पूरा करने के पश्चात्, उद्यमियों को भवन/निवासिता परमिट एवं जनोपयोगी कनेक्शनों के समय आवेदन करते समय अनेक क्लियरेंस प्राप्त करने की आवश्यकता होती हैं। इसके लिए विभिन्न प्राधिकरणों के कार्यालय में अलग-अलग जाना पड़ता है। जिसके कर्मचारी उद्यम स्थल का दौरा करते हैं। बैंचमार्क

[3] **सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योगों के वर्गीकरण हेतु संयंत्रों और मशीनरी में निवेश के मानदडों का प्रयोग किया जाता है अर्थात सूक्ष्म उद्यम में निवेश की अधिकतम सीमा 25 लाख, लघु उद्यमों की अधिकतम सीमा 5 करोड़ तथा मध्यम उद्योगों की 10 करोड़ रू. है।**

[4] **ये आंकड़े सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम, मंत्रालय से लिए गए हैं और इनमें सभी पंजीकृत और अपंजीकृत विनिर्माण और सेवाएं (थोक/खुदरा व्यापार, कानूनी, शैक्षिक और सामाजिक सेवा, होटल और रेस्त्रां, परिवहन तथा भंडारण एवं भांडागार सेवा सहित शामिल है।**

चित्र 2.13: एक उद्यमी के समक्ष चुनौतियां

प्राप्त 17 भारतीय शहरों में से 7 शहरों में बिजली का कनेक्शन प्राप्त करने के लिए 1.5 महीने का समय लगता है। विशेषकर राज्य स्तर पर अनेक प्रक्रियाएं जटिल होती है जिनसे निपटने के लिए कम्पनियों को एक परामर्शदाता नियुक्त करने की आवश्यकता पड़ती है जिससे उनके खर्च में वृद्धि होती है।

2.29 सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम उद्यमों की कार्य प्रणाली में इस उद्यम को समाप्त कर देने की प्रक्रिया आसान बनाने की आवश्यकता है जिसमें कामगारों तथा वित्त पोषकों के दावों का तेजी से निपटान किया जा सके तथा विफल हो गये प्रतिष्ठान की परिसम्पत्तियों का बेहतर उपयोग किया जा सके। विश्व बैंक की रिपोर्ट (2009) के अनुसार भारत के 17 शहरों में किसी भी कम्पनी को दिवालिया घोषित करने की प्रक्रिया के पूर्ण होने में औसतन 7.9 वर्षों का समय लगता है, इस पर कम्पनी की सम्पदा मूल्य का 8.6% का खर्च आता है (जिसमें मुख्य रूप से अधिवक्ता को चुकाया गया शुल्क, समाचार प्रकाशन पर होने वाले व्यय, परिनिर्धारक का शुल्क, तथा परिरक्षण लागत शामिल है), तथा वसूली दर मात्र

चित्र 2.14: वृद्धि को हतोत्साहित करने वाले सरकारी प्रोत्साहन *(सूची पूर्ण नहीं है)*

	स्कीम	विवरण	संगठन के आकार के द्वारा प्रोत्साहन की उपलब्धता			
			सूक्ष्म	लघु	मध्यम	बड़ा
गैर वित्तीय प्रोत्साहन	राष्ट्रीय–विनिर्माण प्रतिस्पर्धा कार्यक्रम	• प्रक्रमों, अभिकल्पों, प्रौद्योगिकी को सुधरने के लिए लक्षित सहायता	✓	✓	✓	✗
	वित्तीय प्रोत्साहनएमएसई के लिए सरकारी खरीद और मूल्य अधिमान नीति	• 358 वस्तुओं को एमएसई से खरीदने के लिए विशेष रूप से आरक्षित किया गया है। अधिप्राप्त की जाने वाली वस्तुओं और सेवाओं के कुल वार्षिक मूल्य का प्रति वर्ष 20% एमएसई से अधिप्राप्त किया जाना है।	✓	✓	✗	✗
वित्तीय प्रोत्साहन	प्रौद्योगिकी अपग्रेड के लिए ऋण संबद्ध पूंजी सब्सिडी स्कीम	• अनुमोदित संस्थाओं से सावधि ऋण पर तकनीकी उन्नयन के लिए 15% पूंजी सब्सिडी	✓	✓	✗	✗
	वित्तीय प्रोत्साहन एमएसई के लिए ऋण गारंटी निधि स्कीम	• 1 करोड़ रुपए तक के ऋण के लिए संपार्श्वीय मुक्त ऋण हेतु ऋण गारंटी	✓	✓	✗	✗
	एमएसई गुच्छ विकास कार्यक्रम	• प्रशिक्षण, तकनीकी, आदिः परियोजना लागत के 75% की मंजूरी • मूर्त परिसंपत्तियां तथा अवसंरचनाः परियोजना लागत के 80% की मंजूरी	✓	✓	✗	✗
	एमएसई में गुणवत्ता उन्नयन प्रमाणन हेतु प्रोत्साहन	• आईएसओ प्रमाणन व्यय के 75% की प्रतिपूर्ति (एक बार में अधिकतम 75 हजार)	✓	✓	✗	✗
	सूक्ष्म वित्त कार्यक्रम	• ऋण प्रदान करने में गैर सरकारी संगठन/सूक्ष्म वित्तीय संस्थाओं को सहायक एसआईडीबीआई	✓	✗	✗	✗

स्रोतः सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम उद्यम मंत्रालय।

13.7% है। यह प्रक्रिया अन्य दक्षिण एशियाई देशों की तुलना में भी कम है जिनमें उसी वर्ष परिनिर्धारण में औसतन पांच वर्षों का समय लगा तथा ऋण दाता को औसतन 19.9% की दर से लाभ प्राप्त होने की आशा है। भारतीय सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम उद्योगों के संबंध में विफल हो गए प्रतिष्ठानों की निम्न गति से सम्पदा वसूली कम स्तर पर वित्त पोषण को पूरित करती है।

2.30 सरकार ने सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम उद्यमों को प्रोत्साहन तथा रियायतें उपलब्ध कराकर इनमें से कुछ बाधाओं की प्रतिपूर्ति करने का प्रयास किया है। किन्तु अत्यधिक सावधानी पूर्वक किए गए वर्गीकरण के आधार पर उपलब्ध करायी गयी स्कीमों तथा हस्तक्षेपी क्रियाकलापों के फलस्वरूप एक ऐसा प्रोत्साहनात्मक ढांचा सृजित हुआ है जो इन प्रतिष्ठानों को विकसित होने से रोक सकती है। 10 लाख से कम राजस्व अर्जित करने वाले प्रतिष्ठानों को सेवा कर से छूट तथा 1.5 करोड़ रुपये से कम वार्षिक टर्नओवर वाले प्रतिष्ठानों को केन्द्रीय उत्पादन शुल्क से छूट इस प्रकार की स्कीमों के उदाहरण है। 'लघु' से 'मध्यम' उद्यम बनने से विशेष रूप से अनेक प्रकार की आय में क्षति होती है (देखे चित्र 2.14)

2.31 तथापि, भारत के विभिन्न शहरों में अनेक अच्छी प्रथाएं एवं समर्थकारी विनियम लागू किए गए है जिन्हें यदि मानकीकृत करके सम्पूर्ण देश में अपना लिया जाए तो व्यावसायिक परिवेश में अत्यधिक सुधार हो सकता है। वास्तव में, विश्व बैंक (2009) ने यह उल्लेख किया है कि यदि यह मान लिया जाए कि 'इण्डियाना' नामक कोई काल्पनिक शहर भी अनेक बेंचमार्क वाले शहरों में प्रयुक्त प्रथाओं को अपना ले (उदाहरण के लिए व्यवसाय को आरम्भ करने के लिए प्रक्रियाओं की संख्या घटाकर पटना स्तर पर लाना, व्यवसाय को आरम्भ करने के लिए दिनों की संख्या मुम्बई स्तर पर लाना, निर्माण परमिटों के लिए प्रक्रियाओं को अहमदाबाद स्तर पर लाना, संविदा को लागू करने के लिए दिनों की संख्या को गुवाहाटी स्तर पर लाना, तथा व्यवसाय को बंद करने के लिए वसूली दर हैदराबाद स्तर पर लाना) तो वह शहर डूइंग बिजनेस, 2009 द्वारा निर्धारित 181 अर्थव्यवस्थाओं में से अत्यधिक उन्नत 67 वें रैंक को प्राप्त कर लेगा।

वित्तपोषण प्राप्त करना

2.32 बैंक और अन्य वित्तीय संस्थाएं सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योगों को ऋण देने से हिचकतें हैं क्योंकि इन संस्थाओं के पास ऋण प्राप्त करने से संबंधित कोई पूर्व की पृष्ठभूमि नहीं होती या ऐसा कोई संपार्श्वीय उदाहरण नहीं होता। इसका समाधान करने का एक तरीका गुच्छ-केंन्द्रित दृष्टिकोण को अपनाना है क्योंकि इससे ऋण प्राप्त करने वाले की लेन-देन लागत कम होती है, जबकि ऋणदाता के लिए गुच्छ के सदस्यों के साथ बारबार पारस्परिक संबंध किए जाने से विश्वास सृजित होने की संभावना बढ़ जाती है। हालांकि इसे सुसाध्य बनाने की दिशा में प्रयास किए गये किन्तु इनका कवरेज अभी भी कम है। भारतीय लघु उद्योग विकास बोर्ड (एसआईडीबीआई) द्वारा चलाई जा रही ऋण गारण्टी योजना जैसी स्कीमें उपयोगी सिद्ध हुई हैं किन्तु अभी भी उनमें अन्तराल बना हुआ है।

2.33 ऐंजल निवेशक, उद्यम पूंजी निधि तथा प्रभाव निवेशक अभी भी शुरुआती चरण में हैं तथा वैश्विक निवेशकों की तुलना में छोटे हैं। इनमें से अधिकांश निवेश सेवाक्षेत्र और विशेषकर प्रौद्योगिकी तथा ई-वाणिज्यक के क्षेत्र के प्रति अभिनत है। सरकारी निधियां (अणुदान तथा मूल वित्त पोषण कार्यक्रम के माध्यम से जैसेकि प्रौद्योगिकी उद्यमशीलता संवर्धन कार्यक्रम एवं प्रौद्योगिकी विकास बोर्ड जैसे अनुदानों और मूल वित्तपोषण के माध्यम से) प्रायः काफी अधिक कागजी कार्य और मंद गति से प्रक्रमण करने के पश्चात् उपलब्ध होती हैं। इसके अतिरिक्त अन्य देशों का अनुभव यह है कि नए उद्यम वित्तपोषण करना एक ऐसा क्रियाकलाप है जिसे निजी क्षेत्र पर छोड़ दिया जाना बेहतर रहेगा। इसमें सरकार स्वयं वास्तव में अग्रणी होने के बजाए निजी वितपोषण को समर्थन प्रदान करने की दिशा में कार्य कर रही है।

2.34 बड़े बैंकों जिनकी शाखाएं केन्द्रीय कार्यालयों से दूर-दूर तक फैली हुई है वे ऋण संबंधी अनुमोदनों के लिए अधिकारी तंत्रीय प्रक्रियाओं को अपनाते हैं तथा शाखा अधिकारियों के विवेक सम्मत प्राधिकार को सीमित कर देते हैं। इसके परिणामस्वरूप छोटे और मध्य आकार के उद्यम जिनका आकार छोटा होता है और काफी हद तक पिछला रिकार्ड काफी हद तक अनौपचारिक होता है, ऋण प्राप्त करने के लिए अपेक्षित मान दण्डों को पूरा करने में अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करते हैं (देखें वर्जर तथा अन्य 2005)। इसके अतिरिक्त बैंकों तथा व्यवसायिकों के साथ की गयी बातचीत से यह ज्ञात होता है कि बड़े बैंक परेशानी से घिरे छोटे प्रतिष्ठानों की सहायता करने के लिए कम प्रयास करते हैं तथा अपने बड़े ग्राहकों को सुविधाएं उपलब्ध कराने में ही लगे रहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि दूर-दराज के क्षेत्रों में अत्यधिक परिवर्ती बैंकिंग प्रणालियों के होने के बावजूद छोटे प्रतिष्ठान सहायता के लिए छोटे बैंकों का सहारा लेते हैं (देख वर्जर तथा अन्य, 2005)। भारत में अधिकाधिक छोटे स्थानीय बैंक सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम उद्योगों की सहायता कर सकते हैं।

2.35 अन्ततः, एक सजग कारपोरेट बॉंड बाजार भी शायद सिद्ध हो सकता है। हालांकि प्रारूपिक रूप में सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम उद्यम बॉंड जारी करने में सक्षम नहीं होंगे किन्तु तथ्य यह है कि बड़ी प्रतिष्ठान तथा अवसंरचना परियोजनाएं अपनी दीर्घकालिक आवश्यकताओं के लिए अभिगम (प्रारूपतः सस्ते) बॉंड वितपोषण को प्राप्त करने में सफल होग, सूक्ष्म, लघू तथा मध्यम उद्यम (एमएसएमई) ऋणों के लिए बैंक तुलन पत्रों के आधार पर कर देंगे।

गुणवत्ता पूर्ण अवसंरचना का सुलभ होना

2.36 गुणवत्तापूर्ण कठोर अवसंरचनाओं जैसेकि सड़क, जनोपयोगी सुविधाओं, रियल स्टेट, संभार तंत्र आदि की मौजूदगी न होने से सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम उद्यमों के लिए व्यापार लागत में गैर आनुपातिक वृद्धि होती है क्योंकि ये उद्यम प्रारूपिक रूप से अभिगम सड़कों तथा कैप्टिव विद्युत संयंत्रों जैसे उपयोगी विकल्पों का सृजन नहीं कर सकते जबकि बड़े प्रतिष्ठान यह कार्य कर सकते हैं। इस सहायक अवसंरचना के अभाव से इनका काफी व्यय

बॉक्स 2.1 : भूमि सुधार

वर्तमान में देश में भूमि संभवत: एकमात्र सर्वाधिक मूल्यवान संपत्ति है। भूमि कार्यों से अधिक नकदी लाभ होने से न केवल कृषि क्षेत्र में दक्षतापूर्वक अधिक संसाधनों को फिर से प्रयोग में लाये जाने का अवसर उपलब्ध होगा बल्कि इससे भूमि उपयोग करने के लिए स्थापित किए जाने वाले व्यवसायों के लिए भी मार्ग प्रशस्त होगा। संभवत: यह उतना ही महत्वपूर्ण है कि भूमि को ऋण हेतु एक सहायक सम्पदा के रूप में प्रयोग में लाये जाने की अनुमति प्रदान की जाए। इस दिशा में आवश्यक तीन महत्वपूर्ण उपाय है: भूमि का सावधानीपूर्वक मापन करना तथा उसका एक निश्चित स्वामित्व निर्धारित करना, भूमि को लीज पर देने को सुकर बनाना तथा सार्वजनिक प्रयोजनों हेतु भूमि के अधिग्रहण की एक निष्पक्ष किन्तु त्वरित प्रक्रिया सृजित करना।

वर्ष 2008 में आरम्भ किए गए राष्ट्रीय भूमि रिकार्ड आधुनिकीकरण कार्यक्रम (एनएलआरएमपी) का लक्ष्य बारहवीं योजना अवधि की समाप्ति तक भूमि रिकार्ड को अद्यतन तथा डिजिटलीकृत करना है। अन्तत: आशय यह है कि यदि भूमि का स्वामित्व किसी ऐसे व्यक्ति के नाम हो जो उस भूमि का कानूनी रूप से वैध स्वामी न हो तो ऐसे मामले में अनुमानित स्वामित्व के बजाय वास्तविक स्वामित्व का निर्धारण करना। डिजिटलीकरण से भूमि के सौदे की लागत में काफी कमी आएगी और साथ ही भूमि के वास्तविक स्वामित्व का निर्धारण हो जाने से कानूनी अनिश्चितता की स्थिति समाप्त होगी और स्वामित्व के संबंध में विवाध को समाप्त करने से भूमि के अधिग्रहण के लिए मध्यस्थ के रूप में सरकार को प्रयोग में लाने की आवश्यकता भी समाप्त हो जाएगी। इस कार्यक्रम के महत्व को देखते हुए विभिन्न राज्यों में इसे लागू करने की गति को तीव्र किए जाने की आवश्यकता है। आसानी से तथा तीव्र गति से भूमि के सौदे किए जाने से विशेषकर ऐसे लघु तथा मध्यम उद्यमों को सहायता प्राप्त होगी जिनके पास बड़े उद्यमों के अनुरूप कानूनी सहायता या प्रबंधन की क्षमता उपलब्ध नहीं है।

भूमि को पट्टे पर दिए जाने के संबंध में व्यापक निषेध से ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में बदलाव की लागत में वृद्धि हो रही है क्योंकि ग्रामीण लोग अपनी भूमि को पट्टे पर नहीं दे पाते तथा प्राय: भूमि को बिना किसी स्वामी के अधीन किए उन्हें उस भूमि को छोड़ना पड़ता है या फिर उन्हें परिवार के किसी सदस्य को उक्त भूमि पर कार्य करने के लिए छोड़कर जाना पड़ता है इन प्रतिबंधों को हटाने से भूमिहीन किसान (या अधिक कुशल भू-स्वामी) उन लोगों से भूमि प्राप्त कर सकते हैं जो गांव छोड़कर शहरों को जा रहे हैं, इसके साथ ही इससे जमीनों के मालिक जो शिक्षा या कौशल प्राप्त हैं, उद्योग या सेवा क्षेत्र में कार्य करने के लिए गांव से बाहर जा सकते हैं। पटटे और भूस्वामी के स्वामित्व का अनिवार्यत: पंजीकरण भूमि पर कास्तकारी करने वालों तथा भूस्वामियों दोनों को संरक्षण प्रदान करेगा। नि:संदेह, इस प्रकार की पट्टेदारी व्यवस्था के आरम्भ होने के लिए भूस्वामियों को इस बात के लिए आश्वस्त होने की आवश्यकता है कि लम्बे समय तक यदि कोई व्यक्ति अपने भूमि से दूर रहता हो तो इससे उस भूमि पर उसका स्वामित्व समाप्त नहीं होगा। इस सुस्पष्ट लीजिंग बाजार और सुस्पष्ट स्वामित्व से स्वामित्व अधिकार को सुदृढ़ बनाने की दिशा में कार्रवाई न करने का कोई कारण न रह जाएगा।

सार्वजनिक परियोजनाओं हेतु शुरू की गयी बड़ी परियोजनाओं के संबंध में जैसेकि प्रस्तावित राष्ट्रीय औद्योगिक तथा विनिर्माण जोन जो लघु तथा मध्यम उद्यमों को स्थापित करना सुसाध्य बनाएगा, के लिए बड़े पैमाने पर भूमि का अधिग्रहण करना आवश्यक है। इस बात को देखते हुए कि वर्तमान में किसी अभिज्ञात भूमि पर रह रहे लोगों को संपत्ति तथा अजीविका हानि सहित पर्याप्त कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा, अत: आर्थिक वृद्धि की आवश्यक हानि सहित पर्याप्त कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा, अत: विस्थापित लोगों के पुर्नवास पर आरोपित लागतों के बीच संतुलन की स्थिति स्थापित करने की आवश्यकता है। भूमि अधिग्रहण में उचित क्षतिपूर्ति प्रदान करने तथा पारदर्शिता प्राप्त करने का अधिकार, पुर्नवास तथा पुनर्स्थापना विधेयक 2011 जो वर्तमान में संसद के समक्ष प्रस्तुत किया गया, में इस प्रकार की संतुलित स्थिति को स्थापित करने की दिशा में प्रयास किए गए हैं। विगत में बड़े पैमाने पर किए गए भूमि अधिग्रहण से प्राप्त अनुभवों का उपयोग करके इस विधेयक द्वारा संस्थाओं को इसके लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उपर्युक्त रूप में ढाला जा सकता है।

अन्तत: भूमि पुनयोंजन स्कीमों के लिए प्रोत्साहन प्रदान किए जाने की आवश्यकता है जिसके अंतर्गत किसी क्षेत्र को विकास हेतु निर्धारित किया जाता है, भूस्वामियों द्वारा अवसंरचना सृजन हेतु अपनी भूमि का कुछ भाग देकर इस स्कीम में भागीदारी की जाती है जिसमें उन्हें शेष भूमि का हिस्सा लौटा दिया जाता है और इसका लाभ यह मिलता है कि अवसंरचना उपलब्ध होने के कारण उस शेष भूमि का मूल्य बढ़ जाता है। इस प्रकार की स्कीमों से विशेषकर लघु तथा मध्यम उद्यम समूह लाभान्वित हो सकते हैं। यह देखते हुए कि बड़े पैमाने पर भूमि का अधिग्रहण करना अभी भी आरम्भिक चरण में है, केन्द्रीय स्कीमों में इस बात की गुंजाइश मौजूद होनी चाहिए कि राज्य सरकारें प्रायोगिक आधार पर उन स्कीमों को अपने संबंधित राज्यों में लागू करें तथा राज्यों के अनुभवों के आधार पर स्कीम को अशोधित किया जाए।

बॉक्स 2.2 : दिल्ली-मुम्बई औद्योगिक गलियारा (डीएमआईसी): औद्योगिक वृद्धि एव विकास हेतु एक समेकित दृष्टिकोण

भारत सरकार द्वारा एक वैश्विक विनिर्माण तथा निवेश अवसंरचना को सृजित करने के लिए आधार के रूप में उच्च क्षमता युक्त पश्चिमी समर्पित माल ढुलाई गलियारा को उपयोग में लाने की दृष्टि से की दृष्टि से डीएमआईसी को विकसित किया जा रहा है। इस परियोजना के अन्तर्गत भावी अवसंरचना से युक्त स्मार्ट औद्योगिक शहरों की एक श्रृंखला स्थापित करने की दिशा में कार्य-योजना आरम्भ की गयी है जो सर्वोत्तम अन्तर्राष्ट्रीय विनिर्माण कार्य तथा औद्योगिक क्षेत्रों से स्पर्धा कर सके। मास्टर प्लान में 24 विनिर्माण शहरों को स्थापित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। भावी उत्पादन क्षेत्रों में सामान्य विनिर्माण, सूचना प्रौद्योगिकी/सूचना प्रौद्योगिकी समर्थित सेवाओं के संघटकों, इलेक्ट्रॉनिक्स, कृषि तथा खाद्य प्रसंस्करण, हैवी इंजीनियरी, फॉर्माश्युटिकल्स, जैव प्रौद्योगिकी तथा सेवाएं शामिल हैं। इसके लिए 90 बिलियन डॉलर का निवेश निर्धारित किया गया है। डीएमआईसी की परियोजना जापान के अर्थव्यवस्था, व्यापार तथा उद्योग मंत्रालय (एमईटीआई) तथा भारत के वाणिज्य तथा उद्योग मंत्रालय की संयुक्त परियोजना है।

संभावित सामाजिक आर्थिक प्रभाव: डीएमआईसी परियोजना का प्रभाव क्षेत्र 436,486 वर्ग किलोमीटर है जो भारत के भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 13.8% है। यह देश के सात राज्यों और दो संघ राज्य क्षेत्रों नामत: दिल्ली, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, दमन एवं दीव तथा दादरा एवं नगर हवेली में विस्तृत है। इस परियोजना से देश की कुल आबादी के लगभग 17% लोग लाभान्वित होंगे। परियोजना का लक्ष्य सात वर्षों में रोजगार की क्षमता को दोगुनी करना, नौ वर्षों में औद्योगिक आउटपुट को तिगुना करना, 8-9 वर्षों के भीतर इस क्षेत्र से किए जाने वाले निर्यात को बढ़ाकर चौगुना करना तथा आने वाले तीन वर्षों में विनिर्माण कार्य क्षेत्र के लिए एक टिकाऊ आधार पर 13.14% वार्षिक वृद्धि प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

शहरी प्रशासन: नवोन्मेषी शहरी प्रशासन ढांचे ने शहरीकरण की प्रक्रिया को कारपोरेट रूप प्रदान किया है। केन्द्र सरकार डीएमआरसी परियोजना क्रियान्वयन सचल निधि नामक एक स्थायी निधि का सृजन गठन करेगी जो एक न्यास के रूप में होगा और जिसे एक न्यासी मंडल द्वारा प्रशासित किया जाएगा। यह निधि विशेष परियोजनार्थ स्थापित की गई कम्पनी (एसपीबी) के लिए ऋण तथा इक्विटी में योगदान करेगी जिसके संबंध में मामला-दर-मामला आधार पर तय किया जाएगा। राज्य सरकार भूमि मुहैया कराएगी। शहर एसपीवी को योजना बनाने और विकास करने का उत्तरदायित्व तथा प्रयोक्ता से शुल्क वसूल करने की शक्तियां प्रदान की गयीं हैं। एसपीबी कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत कम्पनी के रूप में होगी। शहरीकरण तथा विकास के फलस्वरूप इसके मूल्य में होने वाली वृद्धि शहर स्तरीय एसपीवी को उपार्जित होगी तथा उसका शहरों में पुनर्निवेश किया जाएगा। शहरों का आरम्भिक निर्माण वैश्विक आधार प अनुभव रखने वाले परियोजना प्रबंधकों के माध्यम से किया जाएगा जो व्यापक अभियांत्रिकी पर नियंत्रण, निगरानी रखेंगे तथा विस्तृत अभियांत्रिकी की स्थिति की समीक्षा करेंगे।

वित्तपोषण: ट्रक अवसंरचना के मूलभूत प्रावधानों के वाणिज्यिक दृष्टि से व्यवहार्य होने की संभावना नहीं है। इसके लिए सरकार द्वारा वित्तपोषण किए जाने की आवश्यकता है। इस प्रकार के आन्तरिक अवसंरचना परियोजनाओं में भूमि सुधार, सड़क निर्माण कार्य, मिट्टी की कटाई सफाई से संबंधित कार्य, सीवर बिछाने का कार्य, वर्षा जल की निकासी, बाढ़ प्रबंधन और ठोस कचरा प्रबंधन शामिल है। इन अवसंरचना को संस्थापित कर दिए जाने के बाद शहर में परिवर्तित विकास वाणिज्यिक स्तर से व्यवहार्य होगा तथा उसे सरकारी-निजी भागीदारी (पीपीपी) के द्वारा लागू किया जा सकता है। प्रमुख अवसंरचना क्रियाकलापों जैसेकि विद्युत

(जारी...)

बॉक्स 2.2: दिल्ली-मुम्बई औद्योगिक गलियारा (डीएमआईसी): औद्योगिक वृद्धि एव विकास हेतु एक समेकित दृष्टिकोण (जारी)

दिल्ली-मुम्बई औद्योगिक गलियारा और इसका प्रभाव क्षेत्र

स्रोत: दिल्ली-मुम्बई औद्योगिक गलियारा विकास निगम लिमिटेड

संयत्रों, समेकित नगर आयोजना, तथा राजमार्गों, पीपीपी परियोजनाओं की योजना बनायी गई है। बहुपक्षीय, द्विपक्षीय तथा स्थानीय प्रशासन के वित्तपोषण सहित विभिन्न स्रोतों से वित्तपोषण प्राप्त करने की योजना बनाई है।

भौतिक अवसंरचना: इस अवसंरचना के केन्द्र में मल्टीमॉडल उच्च अक्ष भारित समर्पित माल ढुलाई गलियारा (डीएफसी) स्थापित करने की योजना है जो एक उच्च क्षमता युक्त रेलवे प्रणाली है। यह 1483 किलोमीटर को कवर करेगा तथा इस सम्पूर्ण दूरी में नौ जंक्शन स्टेशन होंगे जिसके साथ अन्य रेल सड़क नेटवर्क संयोजित किए जाएंगे ताकि प्रणाली की पहुंच एक व्यापक क्षेत्र तक हो सके। अन्य अवसंरचना योजनाओं में संभार तंत्र का केन्द्र, फीडर सड़क मार्ग, विद्युत उत्पादन सुविधाएं, मौजूदा पत्तनों तथा हवाई अड्डों का उन्नयन, ग्रीन फिल्ड पत्तनों को विकसित करना, पर्यावरण संरक्षण तंत्र और सामाजिक संरचना शामिल है।

औद्योगिक अवसंरचना: इस परियोजना के अन्तर्गत मौजूदा औद्योगिक बस्तियों को उन्नत करने और साथ ही नई औद्योगिक सुविधाओं को विकसित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इन्हें निवेश क्षेत्र (आईआर) तथा औद्योगिक क्षेत्र (आईए) के आधार पर केंद्र आधारित विकास की संकल्पना पर विकसित किया जाएगा। इन्हें एक आत्मनिर्भर औद्योगिक नगर के रूप में विकसित करने का प्रस्ताव है जहां घरेलू अन्तर्राष्ट्रीय हवाई संपर्क, विश्वसनीय विद्युत आपूर्ति, प्रतिस्पर्धी व्यवसायिक पर्यावरण सहित विश्व स्तरीय अवसंरचना सुविधाएं उपलब्ध होगी। निवेश क्षेत्र (आईआर) का न्यूनतम क्षेत्र 200 वर्ग किलोमीटर तथा औद्योगिक क्षेत्र (आईए) का न्यूनतम क्षेत्रफल 100 वर्ग किलोमीटर होगा। कुल मिलाकर 24 विनिर्माण कारी शहरों (आईआर तथा आईए) को स्थापित करने की योजना बनायी गयी है। पहले चरण में सात प्रमुख विनिर्माणकारी शहर स्थापित करने की योजना बनाई जा रही है। ये समग्र वृद्धि तथा विकास के लिए प्रमुख केन्द्र के रूप में कार्य करेंगे।

कौशल विकास: डीएमआरसी में अन्तर्निहित कौशल निर्माण कार्य नीति हब एंड स्पोक माडल पर आधारित है। प्रत्येक राज्य में एक कौशल विकास केन्द्र स्थापित किया जाएगा जिससे सहायक संस्थाएं संबद्ध होगी। इससे संबंधित पाठ्यचर्या उस संबंधित क्षेत्र में अवस्थित उद्योगों की किस्मों तथा अभिज्ञात क्षेत्रीय सामर्थ्य पर आधारित होगी।

भूमि अधिग्रहण: भूमि अधिग्रहण एक प्रमुख चुनौती प्रतीत होता है। इस समस्या से निपटने के लिए विभिन्न राज्य सरकारें अलग-अलग दृष्टिकोण अपना रही हैं। गुजरात ने लेंड-पुलिग विकसित किया है जिसके अन्तर्गत 50% भूमि अधिगृहीत की जाती है तथा शेष 50% भूमि उसके मूल स्वामी के पास छोड़ दी जाती है तथा भूमि के मूल्यवर्धन द्वारा सृजित अवसंरचना में उन्हें एक हिस्सेदारी दी जाती है। महाराष्ट्र में विभिन्न पणधारियों को शामिल करके परस्पर निर्धारित किए गए मूल्य पर क्रय की अनुमति प्रदान की जाती है। हरियाणा तथा राजस्थान में ट्रंक तथा औद्योगिक अवसंरचना राज्य सरकारों द्वारा सृजित की जाती है किन्तु निजी डवप्लपर अन्य क्रियाकलापों में सीधे भाग लेते हैं। मूल्य में वृद्धि राज्यों द्वारा विकास शुल्क के जरिए अधिगृहीत की जाती है। इसके अतिरिक्त, आरम्भिक डीएमआईसी मास्टर प्लान तैयार करने की प्रक्रिया में यह प्रयास किया गया कि ऐसे बड़े भूखण्डों की पहचान की जाए जिन्हें आसानी से अधिगृहीत किया जा सकता है तथा जो परती पड़े हुए हों या फिर सरकार के स्वामित्वाधीन हो।

पर्यावरण की दृष्टि से क्लियरेंस: मास्टर प्लान की प्रक्रिया व्यापक विचारार्थ संदर्भो में क्लियरेंस के लिए प्रयोग में लायी गयी जिसे पहले ही प्राप्त किया जा चुका है। इससे अलग-अलग परियोजनाओं के लिए क्लियरेंस प्राप्त करने के लिए अनुपालन संबंधी क्रियाकलाप कम हुए हैं। अब अलग-अलग परियोजनाओं के लिए प्रारूप स्तर पर प्रभावमूल्यांकन रिपोर्ट प्राप्त करने की आवश्यकता होगी जिसके संबंध में संबधित राज्य प्रदूषण नियंत्रण प्राधिकरणों द्वारा अनुमोदन प्रदान कर दिया जाएगा।

विद्युत अवसंरचना: औद्योगिक तथा आवासीय जोनों के लिए विद्युत एक अनिवार्य आवश्यकता है। विश्व स्तरीय विद्युत अवसंरचना उपलब्ध कराने के लिए 24 X 7 अच्छी गुणवत्ता की विद्युत आपूर्ति आवश्यक होगी। इसके लिए प्रमुख रूप से विद्युत का इनपुट प्रत्येक लगभग 1000-1200 मेगावाट क्षमता की छह गैस आधारित परियोजनाओं से प्राप्त होगी। इस संबंध में विद्युत आपूर्ति की अन्य विकल्पों में स्मार्टग्रिड के माध्यम से एकीकृत नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का उपयोग शामिल होगा।

जल प्रबंधन: डीएमआईसी देश के अपेक्षाकृत शुष्क भागों से गुजरता है। विभिन्न औद्योगिक केन्द्रों में सिंगापुर जैसे देशों से सीख लेते हुए एकीकृत जल संसाधन प्रबंधन योजनाओं का होना अपेक्षित है। यह प्रत्येक निर्माणकारी शहर को उसकी जल आवश्यकता के संदर्भ में आत्मनिर्भर तथा धारणीय बनाया जाए। सभी औद्योगिक केन्द्रों में पुनश्चक्रण की प्रक्रिया को अपनाना एक प्रमुख कार्यनीति है।

सुप्रिया डे द्वारा तैयार किया गया। अभिताभ कांत, मुख्य कार्यपालक अधिकारी तथा प्रबंध निदेशक एवं अभिषेक चौधरी, उपाध्यक्ष, दिल्ली-मुंबई औद्योगिक कारीडोर विकास निगम लिमिटेड को उनके बहुमूल्य सुझावों के लिए धन्यवाद प्रेषित किया जाता है।

होता है और प्रबंधन का ध्यान मुख्य व्यावसायिक क्रियाकलापों से विचलित होता है। असंरचना सृजित करने या व्यवसाय स्थापित करने के मार्ग की एक बाधा भूमि का अधिग्रहण है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि भूमि इन उद्यमों के विकास के मार्ग की एक बड़ी बाधा न बने, अनेक सुधारों को किए जाने की आवश्यकता है जिनकी आवश्यकता निकट भविष्य में उत्पन्न होने वाली है (देखें बॉक्स 2.1)।

2.37 आगे बढ़ते हुए यह आशा है कि दिल्ली-मुंबई औद्योगिक गलियारा (डीएमआईसी) (बॉक्स 2.2) जैसी व्यापक अवसंरचना परियोजनाएं आपेक्षिक रूप से हल्के विनियम, तथा भारी अवसंरचना उपलब्ध कराएंगी। जिनमें व्यवसायी अपनी आवश्यकतानुसार आसानी से भूमि को प्राप्त कर सकेंगे तथा कामगार एक सुरक्षित स्वच्छ नगर में निवास कर सकेंगे।

2.38 हमने एक छोटे व्यवसाय के लिए प्रमुख गैर श्रमिक बाधाओं का वर्णन किया है जो औपचारिक होकर वृहत आकार प्राप्त कर लेते हैं और साथ ही सरकार द्वारा किए जाने वाले कुछ उपायों का भी उल्लेख किया है। इस बात के साक्ष्य हैं कि इन बाधाओं से औद्योगिक कार्य निष्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उद्योगों को उनके द्वारा अवसंरचनाओं के उपयोग की तीव्रता या वाह्य वित्त पर निर्भरता के अनुसार वर्गीकृत करते हुए गुप्ता एवं अन्य (2008) ने यह पाया कि लाइसेंस मुक्त किए जाने के बाद की अवधि में अवसंरचना पर अधिक निर्भर उद्योग उन उद्योगों की तुलना में कम विकसित हुए हैं जो अवसंरचनाओं पर अधिक निर्भर नहीं हैं: तथा इन उद्योगों में विनिर्माण क्षेत्र के आउटपुट में वृद्धि निम्न कोटि की अवसंरचना से युक्त राज्यों में विशेष रूप से कम रही है। यह भी प्रदर्शित किया जाता है कि बाह्य वित्त पर अधिक निर्भर रहने वाले उद्योगों में उन उद्योगों की तुलना में वृद्धि की दर मंद रही है जो बाह्य वित्त पर अधिक निर्भर करते हैं तथा नई फैक्ट्रियों, रोजगार सृजन और साथ ही नए निवेश के संदर्भ में जिनकी स्थिति अधिक खराब है। अत: अवसंरचना, वित्त तक अभिगम और साथ ही समग्र व्यावसायिक परिवेश में सुधार लाने के लिए उपाय किए जाने की आवश्यकता है। व्यावसायिक परिवेश में सुधार लाने के लिए किए जाने वाले उपायों का बॉक्स 2.3 में संक्षिप्त उल्लेख किया गया है।

विकास के मार्ग की संभावित बाधा के रूप में श्रम संबंधी प्रथाएं:

2.39 अभी तक हमने सीधे तौर पर श्रम प्रथाओं की जांच नहीं की है। भारत में ऐसी अनेक श्रम प्रथाएं हैं जो अर्थशास्त्रियों के अनुसार

बॉक्स 2.3 : छोटे व्यवसायों के लिए व्यावसायिक परिवेश में सुधार लाने हेतु आवश्यक उपकरण*

सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम उद्यमों के लिए व्यावसायिक परिवेश में सुधार किए जाने वाले अनेक विनियामक परिवर्तन निम्नानुसार हैं:

व्यवसाय विकास तथा विनियम संबंधी एक समान नीति तैयार करना: ऐसे अनेक व्यावसायिक विनियम हैं जो एक-दूसरे पर प्राय: अतिव्याप्त होते हैं और परस्पर विरोधी होते हैं। सभी व्यावसायिक विनियमों पर निगरानी के लिए एक सामान्य नीति तथा संस्थागत निकाय स्थापित किए जाने से परिवर्तनों के सुदृढ़ीकरण तथा अधिनियमन में सहायता प्राप्त होगी।

व्यवसाय को सुविधाजनक बनाने में सहायता: सरकारी एवं निजी भागीदारी से कार्य कर रही सेवा कंपनियों के अनुरूप स्वतंत्र सुविधाकरण तथा समन्वयन एजेंसियों को स्थापित करना जिन्हें राज्य सरकार द्वारा अधिदेश प्रदान किया जाए, जिनमें विशेषज्ञों को नियुक्त किया जाए तथा जिन्हें व्यवसाय को आरम्भ करने और चलाने के लिए विभिन्न विभागों के माध्यम से कार्य करवाने के लिए उत्तरदायी बनाया जाए। ये एजेंसियां वित्तपोषण, कच्चे माल के आपूर्ति कर्ताओं तथा विपणन उत्पादों की तलाश करने जैसी सेवाओं की व्यवस्था करने में भी सहायता करेंगी। यह उपलब्ध करायी जाने वाली कुछ सेवाओं के लिए शुल्क वसूल करेंगी तथा यह वित्तीय तौर पर आत्मनिर्भर रहेगी।

व्यवसाय आरम्भ करने के लिए पंजीकरण की प्रक्रिया को आसान बनाना:व्यवसाय को आरम्भ करने के लिए समयबद्ध पंजीकरण के लिए एक बार में ही आनलाइन पंजीकरण कराने की प्रणाली सृजित की जाएगी। इसके लिए आवेदक को बेवसाइट पर एक आवेदन दर्ज कराने की आवश्यकता होगी तथा प्रत्येक सरकारी विभाग द्वारा मांगी जाने वाली आपेक्षित सूचना उपलब्ध करानी होगी। कालातीत में इस प्रक्रम को अन्य क्रियाकलापों जैसेकि सीमा पर व्यापार तथा कर भुगतान के लिए भी विस्तारित किया जा सकता है। इसके लिए विस्तृत मानचित्रण क्रियाकलापों की तथा 'सर्वोत्तम प्रथा' ढांचा स्थापित करने की आवश्यकता होगी।

प्रतिष्ठान के विकसित होने के साथ ही अनुपालन के बोझ को आसान बनाना: सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम उद्यमों की अनुपालन सक्षमता से संबंधित रेटिंग (अन्तर्राष्ट्रीय मानकीकरण संघटन द्वारा जारी सामान्य मानकों के माध्यम से) निर्धारित करना तथा उच्च रेटिंग वाले प्रतिष्ठानों के संबंध में आसान अनुपालन मानदण्ड तय करना। आसान मानदण्डों का रूप सभी सरकारी विभागों में सरल क्रियाविधियों (जैसेकि स्वयं प्रमाण) के रूप में हो सकता है। उदाहरण के लिए कर अनुपालन के संबंध में अच्छे विगत रिकार्ड वाली कंपनियों को एक अच्छे नागरिक के रूप में समझा जाए जब इस प्रकार की कंपनी द्वारा प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड से संपर्क स्थापित किया जाता हो। कालांतर में उच्च अनुपालन रेटिंग वित्त पोषकों के लिए प्रतीक के रूप में भी कार्य किया जाता है तथा इस प्रकार संबंधित कंपनी के लिए ऋण प्राप्त करना आसान हो सकता है।

आसान निर्गम की अनुमति: असफल कंपनियों के लिए निर्गम की जटिल प्रक्रिया आसान, तीव्र तथा सस्ती बनाये जाने की आवश्यकता है।

रोजगार कार्यालयों को कारगर नौकरी संतुलन स्थापित करने में सक्षम बनाने के लिए उनमें बदलाव लाना: राज्यों में स्थित 1000 रोजगार कार्यालयों को ऐसे केन्द्रों के रूप में विकसित करना जो परामर्श, मूल्यांकन, प्रशिक्षुता, प्रशिक्षण, नौकरियों की पेशकश करने में समर्थ हो।

सांविधिक प्री ऐम्पशनों से मूल्य/लाभ में वृद्धि करना: वर्तमान में औपचारिक नौकरियों में काम कर रहे कम मजदूरी प्राप्त करने वाले कामगारों के लिए संविधिक रूप से वेतन की कटौती करने का सिद्धांत, विशेष रूप से भविष्य निधि तथा स्वास्थ्य बीमा के लिए, के कारण उनका शुद्ध वेतन बहुत कम हो जाता है तथा यह प्रक्रिया औपचारिक रोजगार को हतोत्साहित करती है। इन पूर्व कठौतियों से प्राप्त होने वाले महत्व और लाभों में विभिन्न पेंशन तथा स्वास्थ्य सेवाओं के बीच प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देकर सुधार लाया जा सकता है।

लघु बने रहने के आर्कषण को कम करना: वृहत रूप में विकसित होना अनाकर्षक है क्योंकि ऐसी स्थिति में सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम उद्यमों को उपलब्ध कराये जाने वाले लाभ छीन लिये जाते हैं तथा नये विनियम तथा बाध्यताएं लागू कर दी जाती हैं। सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम उद्यमों को विकसित होने के लिए प्रोत्साहित करने की दृष्टि से नवोनमेशी दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए यह देख लिया गया है कटौतियों से प्राप्त होने वाले महत्व और लाभों में विभिन्न पेंशन तथा स्वास्थ्य सेवाओं के बीच प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देकर सुधार लाया जा सकता है।

लघु बने रहने के आर्कषण को कम करना: बृहत रूप में विकसित होना अनाकर्षक है क्योंकि ऐसी स्थिति में सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम उद्यमों को उपलब्ध कराये जाने वाले लाभ छीन लिये जाते हैं तथा नये विनियम तथा बाध्यताएं लागू कर दी जाती हैं। सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम उद्यमों को विकसित होने के लिए प्रोत्साहित करने की दृष्टि से नवोंन्मेशी दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए सूक्ष्म, लघु तथा मध्मय उद्यमों द्वारा उस सीमा को पार कर लेने पर जब उसे नये विनियमों का अनुपालन करने की आवश्यकता होती है, उस स्थिति में नये विनियमों को कुछ अवधि के लिए आस्थगित किया गया।

***प्रांजुल भण्डारी द्वारा तैयार किया गया**

चित्र 2.15: उद्योग में संगठित और असंगठित क्षेत्र के रोजगार का विकास

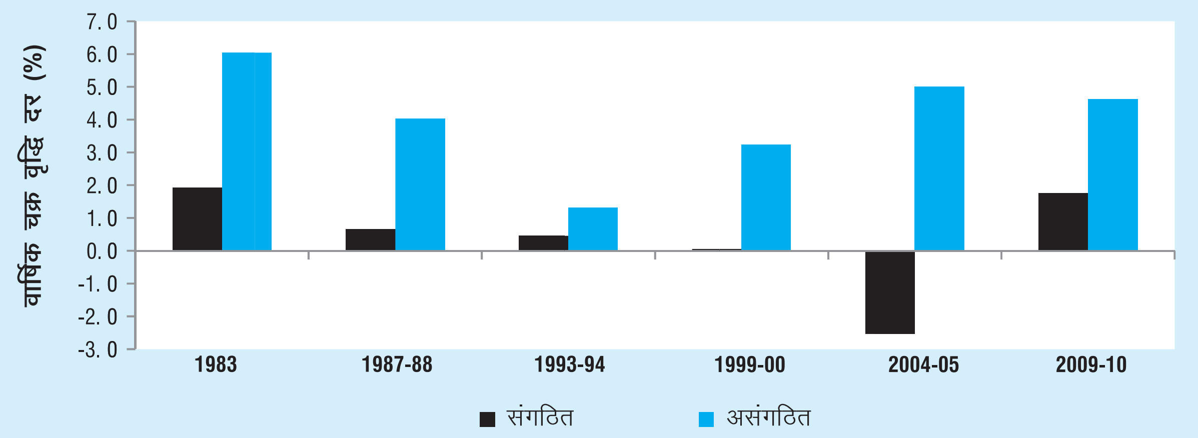

स्रोत: (आर्थक सर्वेक्षण विभिन्न वर्षों के); भारत में रोजगार तथा बेरोजगारी की स्थिति (विभिन्न वर्ष), राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ), सांख्यिकी तथा कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय; भारत की जनगणना

टिप्पणी: उद्योग में विनिर्माण, निर्माण, खनन तथा जनपयोगी सेवाएं शामिल हैं संगठित क्षेत्र में रोजगार से संबंधित आंकड़े आर्थिक सर्वेक्षण से प्राप्त किए गए हैं। संगठित क्षेत्र में निजी क्षेत्र के ऐसे गैर कृषि संस्थापन शामिल हैं जिनमें 10 या इससे अधिक श्रमिक कार्य कर रहे हैं तथा इसमें निजी क्षेत्र की ऐसी सभी संस्थापनाएं भी शामिल हैं जिनका आकार चाहे कुछ भी हो। उद्योग के अन्तर्गत अन्य उपक्षेत्रों के संबंध में संगठित क्षेत्र का संबंध अनिवार्यत: ऐसी सभी कंपनियों और सरकारी प्रशासनों से है। असंगठित क्षेत्र में रोजगार से संबंधित आंकड़ों का आकलन रोजगार में लगे कुल कार्य बल से संगठित क्षेत्र में रोजगार में लगे कार्मिकों की अनुमनित संख्या को घटकार लगाया जाता है। कुल रोजगार सृजन का आकड़ा श्रमिकों की कुल संख्या अनुपात (एनएसएसओ रोजगार-बेरोजगार कार्य बल से संबंधित सर्वेक्षण से ज्ञात) को जनगणना स्रोत से ज्ञात भारत की अनुमानित जनसंख्या से गुणा करके ज्ञात किया जाता है।

बृहत पैमाने के संघटित क्षेत्रों में उत्पादक नौकरियों के सृजन में बाधित करती है। भारत में विभिन्न आकार के प्रतिष्ठानों में श्रम तथा सेवाओं को किराये पर लेने की प्रथा में भारी अन्तर है। भारत में संघटित विनिर्माण क्षेत्र में रोजगार संबंधी आंकड़ों का आकलन करने के लिए डॉर्थी (2008) द्वारा डेविस और अन्य (1998) के सामान क्रियाविधि का तथा 2004 तक के आंकड़े का उपयोग किया गया है। अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि बड़े उद्यमों की तुलना में छोटे प्रतिष्ठानों के लिए नौकरियों के सृजन की दर काफी अधिक है: दूसरी ओर बड़े प्रतिष्ठानों में नौकरियों को समाप्त करने की दर अधिक है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि बड़े प्रतिष्ठानों में निवल रोजगार दर आश्चर्यजनक ढंग से छोटे प्रतिष्ठानों की तुलना में कम है।

2.40 इसी प्रकार, संघटित उद्योग में असंगठित उद्योग (जिसमें लघु प्रतिष्ठानों का प्रभुत्व होता है) की तुलना में कम संख्या में नौकरियां सृजत होती हैं (देखें आकृति 2.15)। वर्ष 2009-10 में असंघटित उद्योग में नौकरियों में वृद्धि को मुख्य रूप से निर्माण कार्यों में आश्चर्यजनक वृद्धि द्वारा अस्पष्ट किया जा सकता है। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) द्वारा किए गए सर्वेक्षण से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि निर्माण कार्य में रोजगार में वर्ष 2004 और 2009 के बीच 70% की वृद्धि हुई। टिप्पणियां उद्योग में विनिर्माण, निर्माण, खनन और उपयोगिता शामिल है। संगठित-क्षेत्र रोजगार आर्थिक समीक्षा से प्राप्त किया जाता है। संगठित क्षेत्र निजी क्षेत्र कृषि भिन्न स्थानों जिसमें 10 या 10 से अधिक कामगार होते हैं और वे सभी स्थापन सरकारी क्षेत्र के आधार स्वरूप नहीं होते से मिलकर बनते हैं। उद्योग के अंतर्गत अन्य उप-क्षेत्रों के लिए, संगठित क्षेत्र का आशय सभी कंपनियां और सरकारी प्रशासनों से है। असंगठित क्षेत्र के रोजगार का आकलन कुल नियोजित कार्यबल से संगठित क्षेत्र में नियोजित रोजगार को घटाकर लगाया जाता है। कुल रोजगार का पता जनगणना स्रोतों के अनुसार भारत की अनुमानित जनसंख्या द्वारा (एनएसएसओ रोजगार-बेरोजगार सर्वेक्षण से) कार्यशील जनसंख्या के अनुपात के गुणक से लगाया जाता है। हालांकि दो बिन्दुओं पर ध्यान देने की जरूरत है पहली, यह वृद्धि उत्पादकता में हुई कम वृद्धि के साथ अधिकांश रूप में 'अनौपचारिक रोजगार' को ओपचारिक क्षेत्र में शामिल करके बताई जाती है (विवरण के लिए बॉक्स 2.5 देखें) दूसरे हाल में संगठित क्षेत्र में रोजगार में हर वृद्धि के बावजूद, असंगठित क्षेत्र के रोजगार का हिस्सा समग्र उद्योग रोजगार का 95 प्रतिशत से भी अधिक बैठता है; विशेष रूप से विनिर्माण क्षेत्र में असंगठित क्षेत्र रोजगार समग्र रोजगार का 70 प्रतिशत बैठता है (विवरण के लिए बॉक्स 2.4 देखें)

2.41 बड़े संगठित विनिर्माण क्षेत्र क्यों अधिक रोजगार सृजित नहीं कर रहे हैं? इसके कई संभावित कारण है। पहला, कठोर श्रम कानूनों ने संगठित, बड़े पैमाने वाले विनिर्माणों के विकास को अवरोधित किया होगा (बॉक्स 2.4 में दिए गए साक्ष्यों को देखें) जिसमें विनिर्माण विकास के लिए श्रम विनियमों को प्रमुख बाधा के रूप में इंगित किया गया है) अधिकांश देशों के मुकाबले भारत में श्रम कानून अधिक कठोर है-रोजगार सुरक्षा नियम (इपीएल) ओइसीडी देशों के अलावा अन्य सभी देशों में कानून ज्यादा कड़े हैं। तथापि, इन कानूनों द्वारा वास्तव में बहुत ही कम कामगारों को कवर किया गया है, फिर भी भारत अधिकांश कामगारों को लाभ पहुंचाए बिना कड़ी कामगार सुरक्षा (कर्मचारियों के लिए एक लोचशीलता और कामगारों को औपचारिक रोजगार देने की अनिच्छा के परिणामों से जूझ सकता है। यद्यपि भारत के श्रम

बॉक्स 2.4 : श्रम विनियम : विनिर्माण में भारतीय फर्मों के आकार और विकास में अड़चन

विनिर्माण क्षेत्र का व्यापक विस्तार, सफल विकासशील देशों विशेषरूप से श्रम बाहुल्य देशों के विकास के अनुभव का प्रमुख तत्व रहा है। इस परिप्रेक्ष्य में भारतीय विनिर्माण क्षेत्र की कई विलक्षणताएं हैं: सबसे पहली जिसका इस अध्याय में पहले भी उल्लेख किया जा चुका है, यह सकल घरेलू उत्पाद में एक स्थिर हिस्से लेकिन छोटे हिस्से का योगदान देती है दूसरे, इसकी संरचना विकास के समान स्तरों पर कायम देशों के मुकाबले कौशल-पूंजी प्रधान क्रियाकलापों की ओर अधिक झुकाव है तीसरे विनिर्माण में रोजगार का एक छोटा हिस्सा ही संगठित विनिर्माण (वर्ष 2009-10 में कुल विनिर्माण रोजगार में असंगठित विनिर्माण क्षेत्र लगभग 70 प्रतिशत बैठता है) में है। और चौथा छोटी फर्मों में रोजगार अधिक संकेंद्रित है (चित्र 1) इस सकेन्द्रण का स्तर अन्य एशियाई देशों की तुलना में बहुत अधिक है उदाहरण के लिए भारत में विनिर्माण रोजगार में सुक्ष्म और लघु उद्यमों का हिस्सा 84 प्रतिशत है जबकि मलेशिया में 27.5 तथा चीन में 24.8 प्रतिशत है।

चित्र 1: एपेरल उद्योग में उद्यम आकार समूह अनुसार रोजगार का वितरण

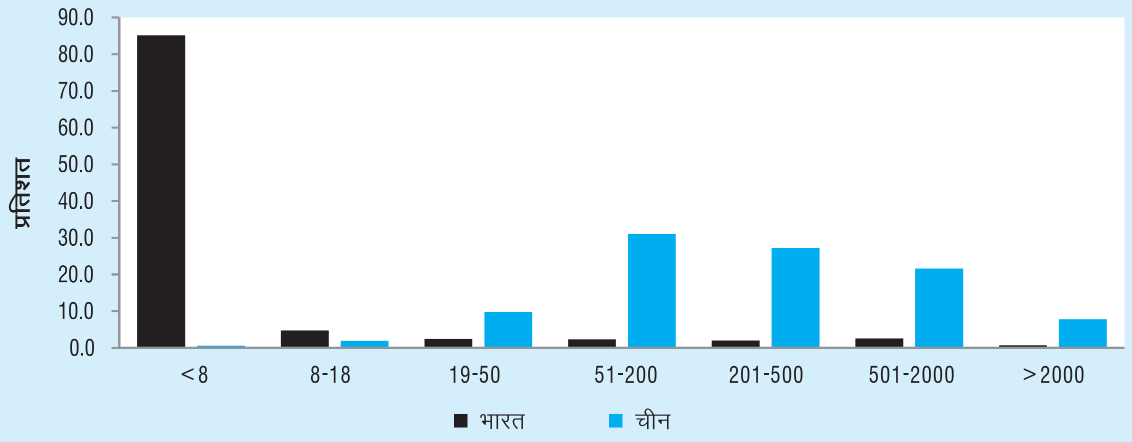

स्रोत: एडीबी (2009), एशिया और प्रशांत के प्रमुख संकेतक

1990 के आरंभ में भारतीय विनिर्माण में उत्पाद विपणन सुधारों की ये विशेषताएं भ्रान्तिपूर्ण है जिसमें नाटकीय व्यापार उदारीकरण और औद्योगिक लाइसेंसों को रद्द करना शामिल है जो मुख्यत: विनिर्माण क्षेत्र संबंधी विभिन्न अवरोधों को दूर करने पर केंद्रित रही है। कैसे कोई भारतीय विनिर्माण क्षेत्र की विशिष्टताओं का उल्लेख कर सकता है? इस गुत्थी को सुलझाने के लिए कई अध्ययन कराए गए जिसमें कड़े श्रम कानून से लेकर सभी तरह की स्थितियां थी जो विकास में रोड़ा बनी, खासतौर से श्रम प्रधान उद्योग, अवसरंचनागत अड़चनें जिनके कारण उद्योग इन सुधारों का लाभ नहीं उठा सके और वित्तीय क्षेत्र के कमजोर होने के कारण ऋण बाधाएं जो छोटे और मध्यम दर्जे की फर्मों को विस्तार से पीछे की ओर धकेल सकती थी। भारत के श्रम कानूनों की कई आधार पर आलोचनाएं की गई जिसमें शामिल है सामान्य आकार और क्षेत्र, उनकी इन विनियमों के प्रति उनकी जटिलता और प्रतिकूलता। भारत में राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर 45 श्रम व्यवस्थापन है (पनागरिया 2008) में श्रम कानून संगठित क्षेत्र पर ही लागू होते हैं जैसे ही कारखाने का आकार बढ़ता है। इसके लिए और अधिक विधान बढ़ जाते हैं इन व्यवस्थापनों के कुछ विशेष भाग विशेष रूप से अवरोधक बन रहे हैं औद्योगिक विवाद अधिनियम (आइडीए) के अध्याय V बी के अनुसार, फर्मों के लिए कामगारों की छंटनी अथवा अस्थायी छुट्टी करने के लिए 100 से भी अधिक कामगारों को नियोजित करना जरूरी है जबकि आईडीए छंटनी निषेध नहीं करता, राज्य उन्हें ऐसा करने की अनुमति देने में आमतौर पर अनिच्छुक रहे हैं। आइडीए की धारा 9ए उन प्रक्रियाओं के बारे में है जिनका नियोजकों द्वारा काम की निबंधन और शर्तों में परिवर्तन करने से पहले अनुकरण किया जाना जरूरी है इन शर्तों में फर्मों के लिए और अधिक कड़ी व्यवस्थाएं भी होती हैं जो उनके मौजूदा कामगारों के लिए प्रभावी रूप से उपयोगी होती है विशेष रूप से कार्य क्षेत्र में बदलाव लाने अथवा बदलती बाजार स्थितियों के अनुसार कर्मचारियों का एक संयत्र से दूसरे संयत्र में स्थानातरण करने से पहले कर्मचारी की अनुमति लेना अपेक्षित है।

ये विनियम किस हद तक विनिर्माण क्षेत्र को प्रभावित करते है? बेसले और बर्गेश (2004) ने पाया कि कामगार श्रम कानूनों से पहले राज्यों में औद्योगिक कार्य-निष्पादन खराब रहा। श्रम विनियमों की महत्ता का पता लगाने के लिए हाल में कई अध्ययन कराए गए थे। संयत्र स्तर पर तैयार आकंड़ों के आधार पर लगाए गए अनुमान संकेत देते हैं कि श्रम प्रधान उद्योगों वाली फर्में और राज्यों में उदार श्रम कानून वाली फर्मों का और अधिक कठोर श्रम कानूनों वाली अन्य राज्यों की फर्मों से टीएफपी अपेक्षाकृत अधिक था। इसके अलावा भारत के संगठित विनिर्माण क्षेत्र में देश भर के सभी उद्योगों में लाइसेंस रद्द करने के प्रभाव में बहुत अधिक असमानता देखने को मिली। खासतौर से श्रम प्रधान उद्योगों ने सुधारों के बाद लाभों के ओर कम रहने का अनुभव किया। इसके अतिरिक्त जटिल श्रम कानूनों वाले राज्यों ने श्रम प्रधान उद्योगों में विकास और रोजगार में धीमी वृद्धि का अनुभव किया (चित्र 2) इसके अलावा समय के साथ उदार श्रम कानूनों वाले राज्यों व जटिल श्रम कानून वाले राज्यों में श्रम प्रधान उद्योगों के कार्य-निष्पादन में अंतर बढ़ा। श्रम कानून भारतीय उद्योगों के आकार के सिकुड़ते सवितरण का के लिए उत्तरदायी महत्वपूर्ण कारक हो सकते हैं। (चित्र 3) राज्यों में और अधिक उदारपूर्ण श्रम विनियमों वाली फर्म अमूमन छोटी फर्में हैं खासतौर से विनिर्भाव के श्रम प्रधान उपक्षेत्रों में।

इसके विपरीत एक विचार यह है कि भारतीय व्यवसायों ने ठेके पर मजदूर लेना, बाह्य सेवा गैर महत्वपूर्ण क्रियाकलापों आदि में कानूनों को ध्यान में रखा है तर्क यह है कि श्रम विनिमय औद्योगिक कार्य-निष्पादन और रोजगार में बढ़ोतरी के मार्ग में बाधा नहीं है। यहां तक कि फर्मों के सर्वेक्षण में व्यावसाय अपने शीर्ष अवरोधक कारकों में श्रम कानूनों को सूचीबद्ध नहीं करते। इसके समाधान का एक तरीका एक व्यवस्थित प्रयोगसिद्ध अनुभव पुख्ता करता है जिसकी यहां चर्चा की गई है वो यह है कि फर्मों ने श्रम कानूनों का अपनाना सीख लिया है—चाहे तो स्थायी कामगार न रखकर

(जारी....)

बॉक्स 2.4 : श्रम विनियम : विनिर्माण में भारतीय फर्मों के आकार और विकास में अड़चन (जारी)

अथवा इन कानूनों के आगे घुटने टेक कर और इसलिए वे उन्हें बाधा नहीं मानते जैसाकि क्रूगर 2007 में संकेत दिया गया है कि व्यथ्य विवाद कि क्या श्रम कानून फर्मों के मार्ग में अवरोध है जो कड़े श्रम कानूनों के अभाव में उभर कर आएगी इनका सर्वेक्षणों में उल्लेख नहीं किया जा सकता। इसके अलावा श्रम कानूनों के बुरे प्रभाव औपचारिक क्षेत्र में रोजगार सृजन में आई कमी ओपचारिक क्षेत्र की कम उत्पादकता और फर्म के छोटे आकार विशेषरूप से, श्रम प्रधान उद्योगों तथा अधिक जटिल श्रम कानूनों वाले राज्यों से देखें जा सकते हैं।

चित्र 2: श्रम प्रधान उद्योगों में वास्तविक उत्पादन

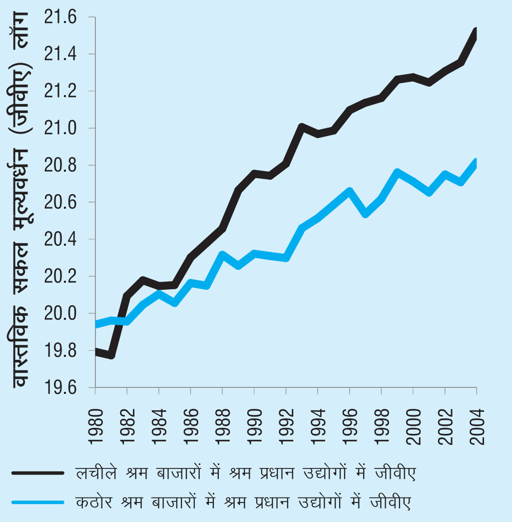

चित्र 3: फर्म के आकार और श्रम विनियम 2005 के अनुसार रोजगार हिस्सा

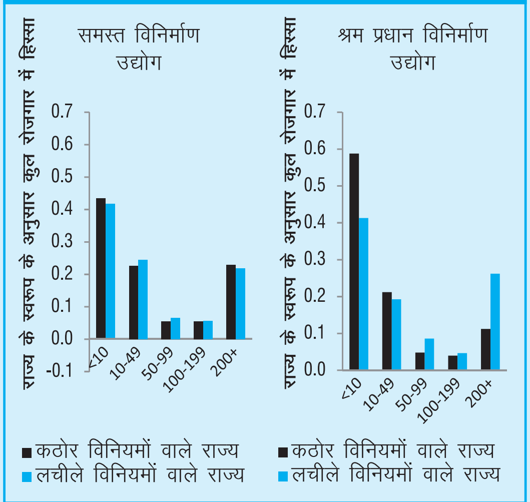

*पूनम गुप्ता और राज हसन द्वारा तैयार किया गया यह बॉक्स गुप्ता और कुमार (2011) तथा हसन और जेनडोक (2012) द्वारा तैयार किया गया है।

1. पानाग्रिया (2004) कोच्छर (2006) और हसन 2012 उदाहरण के लिए देखें।
2. रोजगार संबंधी कार्यशक्ति समूह की रिपोर्ट, 12वीं पंचवर्षीय योजना हेतु योजना एवं नीति
3. एक नियोक्ता को कार्य की शर्तों जिनमें कार्य की पाली, समूह वर्गीकरण अनुशासन के नियम, प्रौद्योगिकी में बदलाव जो मजदूरों की मांग को प्रभावित करती है और विभाग की प्रक्रिया में परिवर्तन शामिल है में किसी तरह का परिवर्तन करने से पहले कामगारों को लिखित में तीन सप्ताह का नोटिस देना चाहिए। ब्यौरे के लिए दत्ता चौधरी (1996) देबराय 2010 देखें।
4. उदाहरण के लिए देखें डोहर्टी और अन्य 2011 तथा गुप्ता और अन्य (2009)।

विनियमों का सीधा प्रभाव गंभीर बहस का मुद्दा रहा है विनियमों संबंधी दृष्टियों पर हर जगह स्थितियों के अन्तर को दिखाते हुए बॉक्स 4 में इसे प्रभासित करते हुए एक निकाय का उल्लेख है जो संकेत देता है कि केंद्र श्रम विनियमों ने कम संगठित विनिर्माण उत्पादन और रोजगार तथा अधिक अनौपचारिक विनिर्माण उत्पादन में अहम भूमिका अदा की है।

चित्र 2.16: पूंजी - श्रमिक अनुपातः भारत

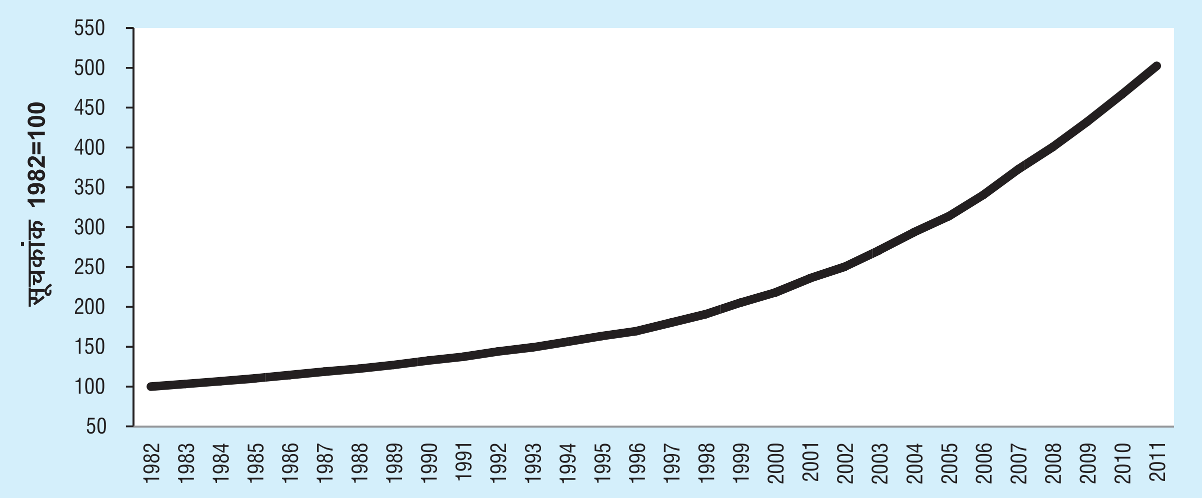

स्रोतः मिश्रा (2013)

2.42 हालांकि कुछ अर्थशास्त्रियों में इस साक्ष्य पर विवाद है जिससे आर्थिक परिणामों के निर्धारण में श्रम विनियमों का महत्व स्थापित होता है। उदाहरण के लिए, भारत के मामले में बेस्ले एवं बर्गीज (2004) शीर्षक पर अध्ययन का प्रायः उल्लेख किया जाता है, उसे आलोचना का विषय बनाया गया है जिनमें भट्टाचार्य जी (2206) द्वारा कि गई आलोचना सर्वाधिक व्यापक है। जबकि इनमें से कुछ आलोचनाओं के संबंध में काफी अधिक काम किया गया है किंतु भारत से बाहर श्रम विनियमों में प्रभावों संबंधी मिश्रित साक्ष्य भी उपलब्ध हैं। विश्व बैंक के अनुसार विकासशील देशों में श्रम नीतियों के वास्तविक प्रभावों की सावधानीपूर्वक की गई समीक्षा का मिश्रित प्रभाव पड़ा है। अधिकांश अध्ययनों से यह ज्ञात होता है कि इसके प्रभाव मंद हैं जो निश्चित तौर पर इस चर्चा की मात्रा की तुलना में कहीं अधिक मंद है।

2.43 यदि श्रम कानूनों की बाधा की पुष्टि होती है तो उनका प्रभाव इस प्रकार रहेगा (i) श्रम के बजाय आमदनी पर ज्यादा ध्यान (ii) अनौपचारिक व्यवस्थाओं का अंतिम/अपने पैमाने को सीमित रखते हुए औपचारिक क्षेत्र से बाहर से सहायता और/अथवा (iii) ठेके पर मजदूर लेना/पूंजी प्रधान तकनीकियों का बढ़ता उपयोग संगठित अर्थव्यवस्था के बढ़ते पूंजी/श्रम अनुपात में प्रतिबिम्बित होता है (चित्र 2.16) इससे एक प्रश्न उभर कर सामने आता है कि क्या कम मजदूरी वाले भारत जैसे देश में श्रम को खत्म कर करके और अधिक पूंजी-प्रधान प्रोद्योगिकियों का अधिक सहारा लेना सही होगा। बेशक जैसे कि हम पहले भी चर्चा कर चुके हैं। देश जैसे-जैसे और धनी होंगे प्रति कर्मचारी और अधिक पूंजी का उपयोग करेंगे लेकिन पूंजी का ओर अधिक उपयोग हुआ है और छोटी फर्मों की अपेक्षा बड़ी फर्मों में इसकी प्रमात्रा में तेजी से बढ़ोतरी हुई है चाहे फिर उन्होंने बहुत कम रोजगार सृजित किए हों (डॉहर्टी 2008)।

2.44 जैसे कि पहले भी चर्चा की जा चुकी है यदि श्रम कानून बहुत अधिक बाधक बन रहे हैं फर्में अनौपचारिक राहत देंगी। भारत

बॉक्स 2.5 : भारत में रोजगार की अनियमितता: शैलीगत तथ्य और नीतिगत बाधाएं

अनियमितता की सीमा

विगत 20 वर्षों में प्रभावशाली विकास के बावजूद भारत में अधिकांश कामगार कड़े परिश्रम वाले कार्य करते हुए अनियमित रोजगार में बने हुए हैं लगभग 85% कार्यबल अनौपचारिक क्षेत्र से जुड़े हैं। कृषि क्षेत्र को छोड़कर अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यबल का हिस्सा 70% है।

अनियमित रोजगार की व्यापकता-कामगार चाहे वे नियमित क्षेत्र या फिर अनियमित क्षेत्र में कार्य करते हैं। और जो रोजगार अथवा सामाजिक सुरक्षा से लाभान्वित नहीं हैं की संख्या काफी अधिक है। जहां अनियमित कार्य व्यवस्थाओं का पता लगाना काफी मुश्किल है। राष्ट्रीय सांख्यिकी आयोग का एक विस्तृत अध्ययन दर्शाता है कि 2004-05 की स्थिति अनुसार 90 प्रतिशत रोजगार अनियमित रोजगार है और ये अनौपचारिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है (चित्र 1) सरकारी क्षेत्र में भी भारत में सभी रोजगारों का एक तिहाई भाग अनियमित है (कोली और सिन्हेरे 2011) कृषि के अतिरिक्त सभी श्रम मजदूर जो तीन चौथाई से भी अधिक है के पास लिखित अनुबंध नहीं है और 70 प्रतिशत सैवेतनिक अवकाश के पात्र नहीं हैं और 74 प्रतिशत को सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत कवर नहीं किया गया है अनियमितता के इन सभी उपायों के साथ भारत में समय के साथ-साथ इसमें वृद्धि देखी गई।

चित्र 1: भारतः असंगठित क्षेत्र और असंगठित रोजगार क्षेत्र में नौकरियां 2004-05

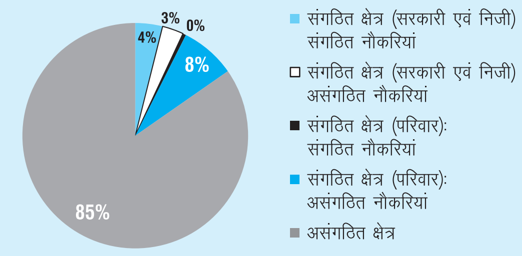

स्रोतः राष्ट्रीय सांख्यिकीय आयोग 2012

चित्र 2.: दक्षिण एशिया के असंगठित क्षेत्र में रोजगार का प्रतिशत

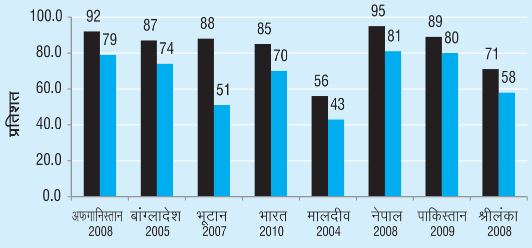

स्रोतः नायर और अन्य 2012 चित्र 3.11

जहां उच्च स्तर की अनियमितता दक्षिण एशिया में आम नहीं है (चित्र 2) भारत (शेष क्षेत्रों के साथ) अंतरर्राष्ट्रीय संभावनाओं पर खरा नहीं उतरता अनियमित रोजगार के लिए पेंशन कवरेज न रखते हुए दक्षिण एशिया का 91 प्रतिशत श्रम बल अनियमित है जो अफ्रीका के बाद अत्युत्तम है (नायर 2012) विकास के समान स्तर वाले देशों की तुलना में भारत के पास इसके कृषि मिच कामगारों के लिए लिखित अनुबन्धों को बहुत कम उपयोग में लाया जाता है जिसका 80 प्रतिशत कार्य बिना किसी अनुबंध के आधार पर किया जाता है (चित्र 3) यह आंकड़ा चीन, पाकिस्तान, घाना और दक्षिण अफ्रीका के आंकड़ों से कहीं अधिक है यह इस तथ्य के बावजूद है कि अनौपचारिक क्षेत्र में भारत में रोजगार का हिस्सा इसके समकक्षियों (चित्र 4) के अनुरूप ही है और औपचारिक क्षेत्र के अन्दर प्रमाणित अनियमित व्यवस्थाओं की पुष्टि करता है।

(जारी....)

बॉक्स 2.5 : भारत में रोजगार की अनियमितता: शैलीगत तथ्य और नीतिगत बाधाएं (जारी)

चित्र 3.: संविदा के बिना कार्यरत कृषि-भिन्न मजदूरों का हिस्सा : 2009-10

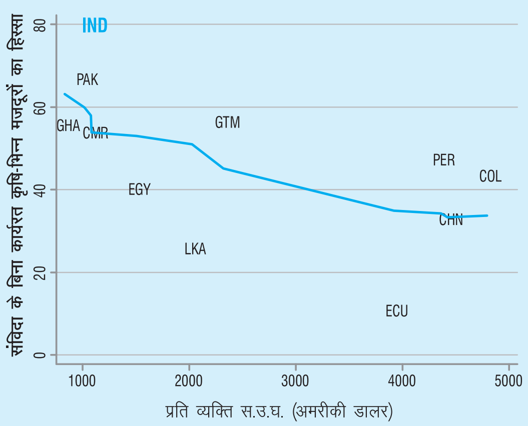

चित्र 4: दस लोगों से कम वाली अनिगमित फर्मों में कृषि भिन्न मजदूरों का हिस्सा, 2009-10

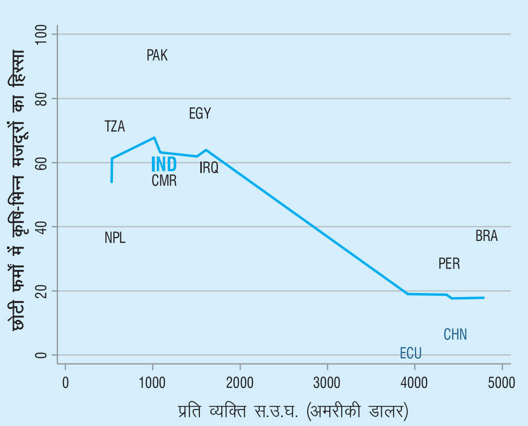

स्रोत: लेखक, संकलन, विश्व बैंक के आंकड़ों पर आधारित

अनियमितता के कारण

अनियमित रोजगार नियमित रोजगार से निकाले गए कामगारों और कामगारों अथवा फर्मों द्वारा स्वैच्छिक तौर पर नियमित रोजगार को छोड़ने दोनों का परिणाम होते हैं 'बाहर होना' अनौपचारिक तौर पर श्रम बाजारों के दोहरे स्वरूप पर जोर देता है जिसमें बहुत अधिक उत्पादनकारी औपचारिक क्षेत्र सशक्त अनौपचारिक क्षेत्र के साथ कार्यशील होता है जिसमें अधिक श्रम शामिल होता है। औपचारिक क्षेत्र के विस्तार में बाधाएं (जैसे कि अपर्याप्त पूंजी) संचय और राष्ट्रीय संसाधन जैसे कि लेविश में (1954) मॉडल अथवा अधिक दवाबकारी लागतें जैसे मिडी सौता (1989) अनियमित रोजगार में विद्यमान रहती है।

स्वैच्छिक दृष्टिकोण के अनुसार फर्में और कामगार तय करते हैं कि नियमित होकर उनके द्वारा प्राप्त लाभों और लागतों की तुलना करने पर क्या वे नियमित हो जाएंगे। इसमें श्रम प्रणालियां, कर निर्धारण और विनियम होते हैं जो प्राथमिक तौर पर स्पष्ट करते हैं कि अनियमित रोजगार के चलन से नियमितता की लागत तेजी से बढ़ती है। परस्पर देशों की तुलना करने पर वे देश जो अधिक दवावकारी प्रविष्टि विनियम रखते हैं अपेक्षाकृत बड़े अनौपचारिक क्षेत्र हैं (ड्यान और अन्य 2002) भारत के श्रम कानून अनौपचारिक व्यवस्थाओं को सहायता देने, श्रम के बजाय पूंजी पर अधिक विश्वास करने अथवा पूरी तरह औपचारिक क्षेत्र से बाहर रहने के लिए अपने पैमाने को सीमित करने के लिए फर्मों को गति प्रदान करते हैं (भारत में श्रम विनियमों के संबंध में बॉक्स 2.4 देखें)।

अनियमितता के परिणाम

भारत की औपचारिकता की उच्च दर इसके आर्थिक विकास पर खतरा है और असमता का स्रोत है औपचारिक और अनौपचारिक क्षेत्रों में कार्यरत कामगारों के बीच उत्पादकता में भारी अन्तर है। (चित्र 5 पेनल ए) एक कामगार को एक अनौपचारिक क्षेत्र से ओपचारिक फर्म में

चित्र 5: क्षेत्र और रोजगार के स्वरूप के अनुसार प्रति कामगार मूल्यवर्धन

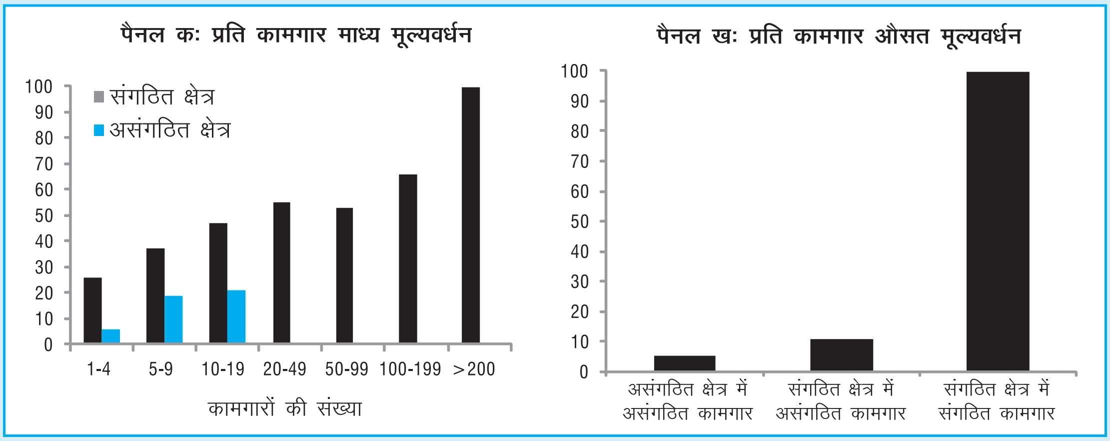

स्रोत: विश्व बैंक (2012) 'मोर एण्ड बेटर जॉब्स इन साउथ एशिया' अध्याय एक, सिहांवलोकन, चित्र 1.13, पृष्ठ 13-पैनल ए के संदर्भ में तथा पैनल बी के संदर्भ में लेखक का परिकलन राष्ट्रीय सांख्यिकी आयोग (2012) पर आधारित।

(जारी....)

बॉक्स 2.5 : भारत में रोजगार की अनियमितता: शैलीगत तथ्य और नीतिगत बाधाएं (जारी)

भेजने, संसाधन से बेहतर आवंटन से लाभ बढ़ेंगे सच तो यह है कि मोटे तौर पर लगाए गए अनुमान संकेत देते हैं कि औपचारिक क्षेत्र में अनोपचारि रोजगार ने औपचारिक क्षेत्र में अनौपचारिक रोजगार की तुलना में मूल्य वृद्धि को दोगुना कर दिया है। और महत्वपूर्ण बात यह है कि एक औपचारिक क्षेत्र के भीतर औपचारिक रोजगार प्रति व्यक्ति मूल्य वर्द्धन औपचारिक क्षेत्र में अनौपचारिक रोजगार से लगभग 10 गुना अधिक है (चित्र 5 पेनल बी) इसलिए खुले तौर पर बात करते हुए औपचारिक क्षेत्र में अनुबन्ध के अन्दर लाभों के पर्याप्त रहने की संभावना है और ये लाभ अनौपचारिक क्षेत्र के एक कामगार के औपचारिक क्षेत्र में अनौपचारिक रोजगार में भेजने से उल्लेखनीय रूप से अधिक होंगे।[4]

कम आय के अलावा अनियमित कामगार कार्य की उपयुक्त शर्तो और कार्य स्थल पर सुरक्षा जैसे मौलिक मानव अधिकारों का उल्लंघन किये जाने पर ओर अधिक कमजोर पड़ गए हैं। बहुत कम रोजगार सुरक्षा और सुरक्षा जालों तक सिमित पहुंच के साथ अधिकांश रूप में अनौपचारिक तौर पर नियोजित कामगार बिमारी और आय में कमी जैसे झटकों के कारण बहुत अधिक पिछड़ जाते हैं इसमें काई हैरानी की बात नहीं है कि अनौपचारिकता और भारत में गरीबी के बीच एक मजबूत रिश्ता है (एनसीइएयूएस 2009)।

फर्मों की राय से अनियमित कार्य व्यवस्था लाभ लाती है। मांग के आए उतार चढ़ाव को देखते हुए अपेक्षाकृत कम कीमत और अधिक लोभशीलता के साथ श्रम की प्रमात्रा को समायोजित किया जाता है हालांकि ये लाभ अंशतः लागतों को प्रति सन्तुलित करते हैं जैसेकि कामगारों की कम इमानदारी और कौशल निर्माण में उनके अपर्याप्त प्रोत्साहन आदि। इसके अलावा निवल लाभों के लिए कामगारों को समग्र रूप से सामाजिक और आर्थिक लागतों को भारित करने की आवश्यकता है।

अंत में अनौपचारिकता के प्रचलित उच्चस्तर घटते राजकोषीय के साथ राजकोषीय लागत को बढ़ाते हैं (लेवी 2008) वर्ष 2004-05 में असंगठित क्षेत्र ने भारत के लगभग आधे स०घ०उ० में योगदान दिया (राष्ट्रीय सांख्यिकी आयोग 2012 पृ० 30) यदि अनौपचारिक क्षेत्र को औपचारिक अर्थव्यवस्था से जुड़ना पड़े तो कर आधार में व्यापक विस्तार होता है। अनौपचारिकता के उच्च स्वर अर्थव्यवस्था पर सीधे और त्वरित प्रभाव डालने के लिए आर्थिक नीतियों की योग्यता में बाधा डालता है।

प्राची मिश्रा, डेविड न्यूहाउस और पेटियां टोपालोवा द्वारा तैयार किया गया।

1. **2009-10 की स्थिति के अनुसार अनौपचारिक क्षेत्र को राष्ट्रीय उद्यम आयोग द्वारा असंगठित क्षेत्र में परिभाषित किया गया है क्योंकि सभी विनियमित उद्यम मालिकाना अथवा भागीदारी आधार पर संचालित है और इनमें 10 से भी कम कर्मचारी काम करते हैं।**
2. **औपचारिक क्षेत्र में अनियमित रोजगार की घटना गैर औपचारिक परिवार क्षेत्र में सर्वाधिक है जहां कोल्ली और सिन्हेरे (2011) ने 95 प्रतिशत रोजगारों के अनियमित रोजगार होने का अनुमान लगाया है।**
3. **ये अनुमान राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (2012) के हैं?**
4. **मोटे तौर पर ये आंकड़े सम्पूर्ण औपचारिक और अनौपचारिक रोजगार मूल्य वर्धनमें आए अन्तर की ऊपरी सीमा उपलब्ध कराते हैं भूमि अनौपचारिक कामगार उनमें रोजगार प्रतिष्ठा से अलग मामलों के कारण औपचारिक क्षेत्र के कामगारों की तरह उत्पादनकारी नहीं हो सकते जैसेकि शिक्षा अथवा कौशल का अभाव। यह आकस्मिकता अन्य तरीके की भी हो सकती है यदि फर्में जो कम उत्पादनकारी है अनियमित कामगारों को नियोजित करना चाहे।**

में अनौपचारिकरण की सीमा विकास के समग्र स्तरों पर विद्यमान देशों की ही भांति है (इसके लिए भारत में अनौपचारिक रोजगार की सीमा, काल और परिणाम के लिए बॉक्स 2.5 देखें। भारत में लगभग 85 प्रतिशत काबिल अनौपचारिक क्षेत्र (सभी विनिगमित उद्यमों में जो भागीदारी अथवा स्वामित्व के आधार पर चलाए जा रहे हैं और जिनमें 10 से भी कम कर्मचारी कार्य करते हैं से जुड़े हैं/अनौपचारिक रोजगार क्षेत्र की स्थिति कामगार जो या तो अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत हैं या फिर औपचारिक क्षेत्र में लेकिन जो रोजगार सामाजिक सुरक्षा से लाभान्वित नहीं हैं। यहां तक बड़ी अधिक है; 95 प्रतिशत रोजगार अनौपचारिक है और 80 प्रतिशत कृषि भिन्न ठेके पर कार्य न करने वाले मजदूरी वाले कामगार हैं।

2.45 आगे इस संबंध में सुझाव देने से पहले कामगारों के प्रशिक्षण और कार्य सीखने का ठेका देकर औपचारिक रोजगार के लाभ पर बल देना आवश्यक है खासतौर से यदि ठेके को लंबी अवधि के लिए चलाए जाने की पर्याप्त संभावना बनती हो। भारत में तकनीक/व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थानों (जैसेकि अगर जर्मन मॉडल की बात करें) की आवश्यकता के साथ रोजगार के स्तर पर मानक पूंजी में वृद्धि करने का सबसे आसान और सर्वाधिक सुग्राही तरीका है। रोजगार जो किसी फर्म में कौशल निर्माण को बढ़ाने और कर्मचारियों में कुशलता लाने के लिए प्रोत्साहन देने का कार्य करते हैं ये ठेकों के लिए वेतन और प्रोत्साहन अनुभव के साथ मुआवजे में वृद्धि जिससे कि कर्मचारी प्रशिक्षण और अवकाश न ले। इसके विपरीत अनौपचारिक और अस्थायी ठेके वास्तव में सरल होते हैं और कभी कभी दिखने में भारी भरकम लगते हैं पूर्ण रूप से वांछित वास्तुकला के उलट होते हैं। दीर्घावधिक रोजगार जीवन पर्यन्त नहीं चलते यह ठेके का अन्य स्वरूप है जो आमतौर पर भारत में मिलता है स्थायी रोजगार न केवल फर्म की लोचशीलता पर पाबंदी लगाता है यह कामगारों के कार्य सीखने और उनके प्रयासों के प्रोत्साहन को भी कम करता है। अधिकांश देशों में मौजूद एक मध्यस्थ ढांचा अनुबन्धों के रूप में है जो अगर फर्में मंदी से गुजरती हैं अथवा कामगारों का कार्य निचले दर्जे का रहता है निरस्तीकरण की अनुमति देता है लेकिन सावधानीपूर्वक परिकल्पित किए गए तथा प्रभावी उपचारात्मक तंत्र के साथ यदि कर्मचारी को बिना किसी कारण के कार्य से निकाला जाता है तो उसे सेवा का मुआवजा तथा बेरोजगार भत्ते दिए जाते हैं।

2.46 बिना इस बात की परवाह करते हुए कि इन कारणों को कौन कैसे लेता है तथ्य यह है कि भारत पर्याप्त रूप से उत्पादक रोजगार सृजित नहीं कर रहा है। इसके अलावा भारत विश्व में

बॉक्स 2.6 : मारीशस चमत्कार

जब मारीशस बिट्रिशों से आजादी प्राप्त कर रहा था उस समय दो लब्ध-प्रतिष्ठित बुद्धिजीवियों (नोबल पुरस्कार विजेता) जेम्स मीडे (अर्थशास्त्री) तथा वी एस नायपाल (साहित्य) ने इस छोटे से द्वीप के लिए कठोर भविष्य की भविष्यवाणी की। सन 1960 तक केवल एक फसल- चीनी पर पूरी तरह निर्भर और बाजार के भारी आघातों के प्रति प्रवृत्त था तथा जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हो रही थी। उनकी भविष्यवाणी का खंडन कैसे किया जाए? सन 1977 से 2006 के मध्य अर्थव्यवस्था की वास्तविक विकास दर प्रतिवर्ष औसतन 5.2 प्रतिशत बढ़ी। शेष अफ्रीका के 6.7 प्रतिशत के मुकाबले प्रति व्यक्ति जीडीपी वृद्धि का औसत 4.2 प्रतिशत आ गया। वर्ष 1976 से 2008 तक जीवन की उत्तर जीविता 62 वर्ष से बढ़ाकर 73 वर्ष हो गयी तथा प्रति 1000 शिशु मृत्यु दर 64 से घटकर 15 रह गयी।

इस निष्पादन को कैसे व्यक्त किया जाए? पहले दो दशकों के कायापलट का मुख्य घटक ईपीजेड का सृजन और दक्ष प्रबंधन है। मारीशस के ईपीजेड की कुछ विशिष्टियां इस प्रकार हैं-

(1) यह भौगोलिक क्षेत्र नहीं था। कोई भी फर्म रेगुलेटरी योजना चुन सकती थी।

(2) शेयर (1972) के नोट के अनुसार मुख्य नीतियां निवेश और मैटेरियल, आयात के अनुकूल थी। लाभ का प्रत्यावर्तन प्रतिबंधित नहीं, विदेशी निवेशकों को 10 वर्ष तक आयकर से छूट, मजदूरी स्थिरीकरण की केन्द्रीय नीति, मजदूरी में मॉडरेट वृद्धि तथा श्रम असंतोष न्यूनतम रहने की अव्यक्त व्यवस्था।

(3) फर्मों को श्रमिक संख्या नियंत्रित करने हेतु ले आया गया तथा वास्तविक प्रतिपूरक पैकेजों की अनुमति तथा कार्य-अवधि निर्धारण में पर्याप्त लचीलेपन की छूट।

(4) महिलाओं की बड़ी संख्या में भागीदारी हेतु कानून में पर्याप्त छूट।

नीचे चित्र 1 में संरचनात्मक रूपान्तरण पर इनका रेखा चित्रीय प्रभाव दर्शाया गया है। प्रथम स्तर अधोसंरचनात्मक परिवर्तन और पूर्ण रोजगार सुनिश्चितता से प्रोत्साहित हुआ। सन 1990 तक द्वीप की एक तिहाई श्रमिक बल, 90000 व्यक्तियों को ईपीजेड में रोजगार मिला हुआ था। सन 1970 से 1990 तक ईपीजेड में जुड़े रोजगारों में दो तिहाई वृद्धि हुई। इस संक्रमणकालीन संभाव्यता से मानवीय पूंजी निर्माण और सेवाओं में अतिरिक्त विविधीकरण को बल दिया।

चित्र 1: मारीशस में संरचनागत परिवर्तन और उनके परिणाम

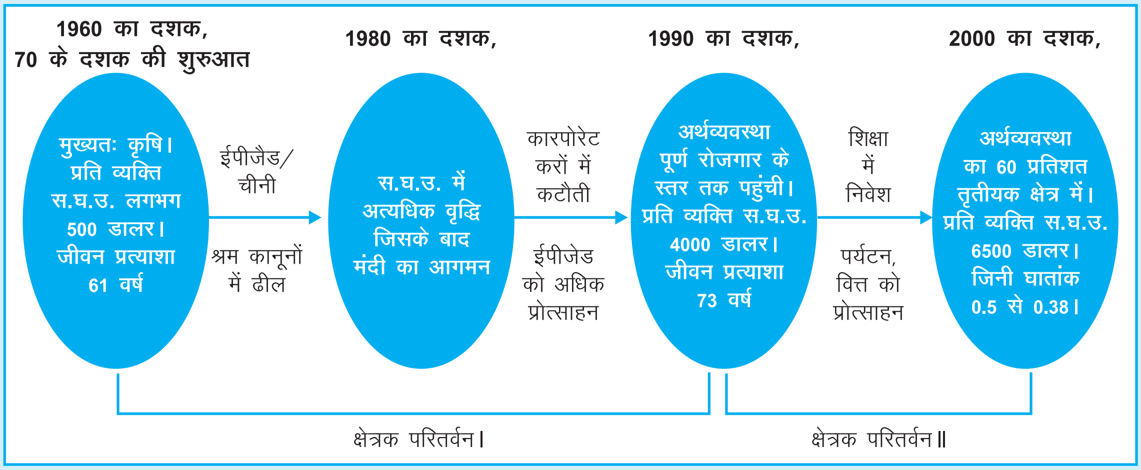

स्रोत: रोहित लाम्बा द्वारा तैयार किया गया।

अधिक व्यापक श्रम कानून और बिना सुरक्षा दिए कार्यशील जनसंख्या रखने में भी अनिश्चित बना हुआ है न केवल अनियमित कामगारों का कम उत्पादकता का योगदान है बल्कि उनकी आमदनी भी कम होती है लेकिन वे कार्य की उपयुक्त शर्तें और कार्यस्थल पर सुरक्षा को लेकर कामगारों के बुनियादी आधार के उल्लंघन किए जाने के कारण अधिक कमजोर पड़ गए हैं इसके विराधाभास में बॉक्स 2.4 और 2.5 संकेत देते हैं कि यह मौजूदा विनियमों के माध्यम से दी गई आकस्मिक संरक्षण हो सकता है जो अपर्याप्त सुरक्षा के साथ-2 अच्छे रोजगार की कमी दोनों के लिए उत्तरदायी है जो ज्यादातर कामगारों के साथ होता है। भारत में सुधार पर बहुत अधिक बहस, चर्चा के बाद ही कार्यान्वित किया जाता है या फिर ऐसी स्थिति में जब उन पर कोई राजनितिक दबाव पड़ता है इसलिए यह जरूरी है कि श्रम बाजार के सुधारों पर जल्दी ही सर्वसम्मति निर्मित की जानी चाहिए। भारत में औपचारिक क्षेत्र में और अधिक फर्मों को लाए जाने की आवश्यकता है खासतौर से उन फर्मों को जो उत्पादक रोजगार सृजित करने व उनके बढ़ोत्तरी करने में लगी रहती हैं बॉक्स 2.6 में मारीशस के मामले को दर्शाया गया है और बताया गया है कि किस प्रकार निर्यात वर्द्धन क्षेत्र (इपीजेड) का सृजन और श्रम कानून में रियायत पूर्व रोजगार और रहन सहन स्तर ऊंचा करने में कारगर थे।

2.47 मौलिक सुधारों पर राजनीतिक सहमति बनाने में समय लग सकता है। इसी बीच राज्यों को बिना केन्द्र से विवाद किए इसके प्रयोग में लोचशीलता बरतने की अनुमति बरतने की अनुमति दी

जा सकती है। विकसित सर्वोत्तम परिपाटी और रोजगार में वृद्धि करने में सफलता, हजारों दस्तावेजों की तुलना में सरलता से सैद्धान्तिक चर्चाओं को खत्म कर देगी। फिर भी यदि कड़े कानून अस्तित्व में लाए जाएं।

भारत से बाहर देशों में श्रम विनियमों के प्रभाव से संबंधित साक्ष्य मिले जुले हैं विश्व बैंक (2013) के अनुसार, विकासशील देशों में श्रम नीतियों के वास्तविक प्रभाव की सावधानीपूर्वक की गई समीक्षा से एक मिली जुली तस्वीर उभरती है अधिकांश अध्ययनों से पता चलता है कि प्रभाव साधारण हैं-निश्चित रूप से गहन चर्चा के बाद किए गए सुझावों की तुलना में बहुत अधिक साधारण हैं।

2.48 इसी बीच सरकार को अनियमित कामगारों (अनियमित क्षेत्र और नियमित क्षेत्रों में अनियमित कार्य व्यवस्था) के लिए राष्ट्रीय स्तर की योजनाएं यथा राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना तथा नयी पेंशन योजना और बेरोजगार बीमा योजना यथा आटो-मोटिव कम्पनियों द्वारा सृजित की जाने वाली पूरक बेरोजगार लाभ निधि) का क्षेत्र बढ़ाकर न्यूनतम संरक्षा जाल सृजित करते रहना चाहिए।

सेवाएं नौकरियां क्यों नहीं सृजित कर पा रहीं?

2.49 जैसे कि पहले चर्चा की जा चुकी है, प्रारंभ में सेवाओं में रोजगार का अंश अपेक्षाकृत काफी अधिक था। अब इसकी वृद्धि घट रही है। उसी समय, प्रारंभ में मूल्य संवर्धन का अंश उच्च था, तेजी से बढ़ता रहा है। इससे स्पष्ट है कि यह क्षेत्र विनिर्माण की समस्या के सामने, जबकि उत्पादकता अधिक थी, सेवा क्षेत्र अनेक जॉब सृजित नहीं कर पा रहा।

2.50 व्यापार सृजन में कुछ सामान्य बाधाएं यथा विनियामक बाधाएं यथा निधि व्यवस्था तथा संरचना, सेवाओं का उद्योग फर्मों की हिस्सेदारी। सेवाओं में नौकरियों के सृजन में श्रम विनियमों की बाधाएं भी संभावित हैं। उदाहरणार्थ भारत में 277 खुदरा स्टोरों के व्यापारी अपने व्यापार में श्रम विनियमों को समस्या मानते हैं (अमीन 2008)।[5] लेकिन सेवा क्षेत्र के लिए शिक्षा और कौशल की आवश्यकता है। उच्च सेवाओं तथा सूचना प्रौद्योगिकी, साफ्टवेयर विकास तथा वित्त क्षेत्र के लिए उपयुक्त उच्च शिक्षा महत्वपूर्ण है। मध्य स्तरीय सेवाओं का यथा खुदरा व्यापार, होटल और रेस्टोरेंट सेवाओं के श्रम बल के लिए भी पर्याप्त कौशल अपेक्षित है।

बॉक्स 2.7 : औपचारिक प्रशिक्षुता अधिनियम: एक विचार जिसका समय आ गया

प्रशिक्षुता क्यों महत्वपूर्ण है?

प्रशिक्षुता प्रवेश स्तर के कामगारों को औपचारिक कामगारों की संख्या में शामिल करने से पूर्व कार्य स्थल पर सीखने, यहां तक कि पढ़ने और अर्जित करते समय उनसे अपेक्षित कौशल सुनिश्चित करने का एक प्रभावी तरीका है। यह भारत की प्राचीनतम पद्धतियों में से एक है। पीढ़ियों से शिल्पकारों, मूर्तिकारों, बुनकरों, यहा तक कि पुरोहितों में भी अपना पारम्परिक ज्ञान कौशल प्रशिक्षुओं को देने की समृद्ध परम्परा है। तथा अत्यधिक आगे बढ़ने तथा समय की मांग को पूरा करने के लिए औपचारिक होने की आवश्यकता है।

वर्तमान परिदृश्य में भारतीय शिक्षा प्रणाली केवल अर्हक शिक्षा की मांग से परिपूर्ण है। टीमलीज (2012) के अनुसार भारत की 2030 की उच्च शिक्षा प्रणाली का अभी निर्माण किया जाना है और यह अभी लागत, गुणवत्ता और स्केल जैसी तीन समस्याओं से जूझ रहा है। यह विद्यमान शिक्षा प्रणाली की कार्य हेतु तत्पर कामगार बनाने की कमी से युक्त है। वास्तव में औपचारिक प्रणाली तथा नियोजनों की आवश्यकताओं में असंबद्धता तेजी से बदलते हुए संरचनात्मक और तकनीकी परिवर्तन से आने वाले समय में बहुत तीव्र हो जाएगी।

इस परिवेश में कंपनियों द्वारा चलाए जा रहे प्रशिक्षु कार्यक्रम, नियोक्ताओं के शिक्षण से जुड़ जाने पर श्रमिकों में कार्य संबद्ध कौशल, मरम्मत और तैयारी हेतु सशक्त भूमिका निभा सकते हैं। वे इसमें श्रमिकों द्वारा बनाए जा रहे पांच महत्वपूर्ण घटकों कोयला, कृषि से कृषि भिन्न, ग्राम्य से नगरीय, असंगठित क्षेत्रों से संगठित क्षेत्र, विद्यालय से कार्य तथा जीविकापरक स्वरोजगार से मजदूरीपरक रोजगार, जोड़ सकते हैं।

अनेक राष्ट्र जिनमें जापान, अमेरिका, यूके और जर्मनी शामिल हैं। इन्होंने श्रमिकों पर केन्द्रित कौशल कार्यक्रमों से अत्याधिक लाभान्वित हो रहे हैं। जर्मनी में तो सुपरिचित दोहरी शिक्षण व्यवस्था है जिसमें कंपनी के कार्यस्थल पर अनुभव के साथ-साथ व्यावसायिक स्कूल में ऑनलाइन/क्लासरूम शिक्षण भी शामिल है। कम्पनी प्राधिकारी पहले तथा स्कूल प्राधिकारी दूसरी व्यवस्था के लिए जिम्मेवाद हैं। 22 वर्ष से कम आयु के 75% से अधिक जर्मन प्रशिक्षुता कार्यक्रमों में शामिल हो चुके हैं।

प्रशिक्षुओं से कारपोरेट भी लाभान्वित होते हैं। प्रशिक्षुता के संबंध में यूके में 2005 के कार्य बल अध्ययन की एक रिर्पोट के अनुसार बढ़ी हुई उत्पादकता, प्रशिक्षण की निवल न्यून लागत (प्रशिक्षण बनाम गैर प्रशिक्षुता) अधिक स्टाफ धारण श्रम, तथा अधिक प्रोत्साहित श्रमिक बल जैसे लाभ प्राप्त हुए।

भारत के पास पहले से क्या है?

भारत में प्रशिक्षुता अधिनियम, 1961 तथा प्रशिक्षुता नियम 1992 के अंतर्गत प्रशिक्षुता प्रशिक्षण संचालित किया जाता है। संगठनात्मक संरचना नियम और विनियमों की अनदेखी जटिल एवं बोझिल है। श्रम और रोजगार मंत्रालय द्वारा क्षेत्रीय कार्यालयों के माध्यम से व्यवसायिक प्रशिक्षुता का पर्यवेक्षण किया जाता है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय स्नातक, तकनिशियन और तकनीशियन (व्यवसायिक) प्रशिक्षुता पर विभिन्न नगरों में स्थापित चार बोर्डो द्वारा निगरानी करता है। नियोक्ताओं और नियोजितों दोनों के लिए पात्रता मानक कड़े और विनियमित हैं।

अनुमति, व्यापार-अनुमति, प्रशिक्षण-अवधि, वृत्तिका स्तर, प्रशिक्षु/कर्मचारी अनुपात तथा प्रशिक्षण अनुपात के कड़े मानकों से प्रशिक्षुता में वृद्धि प्रभावित हुई। नयी प्रशिक्षुता स्थितियों का सृजन करना कठिन है। पूर्व में सृजित अनेक स्थान खाली पड़े हैं (सारणी-1) परिणाम स्वरूप भारत में 3,00,000 से भी कम औपचारिक प्रशिक्षु हैं।

(जारी....)

[5] **भारत के खुदरा क्षेत्र से संबंधित श्रम विनियम दुकान तथा स्थापना अधिनियम (एसईए) में निहित है जिनमें न्यूनतम मजदूरी, कार्य के घण्टों का नियमन, रोजगार तथा सेवा के समापन से संबंधित नियम शामिल हैं।**

बॉक्स 2.7: औपचारिक प्रशिक्षुता अधिनियम: एक विचार जिसका समय आ गया

स्रोत- श्रम एवं रोजगार मंत्रालय

कंपनियों को प्रशिक्षण कार्यक्रम के नाम पर सस्ते श्रम को जुटाने से रोकना, प्रशिक्षुता अधिनियम को कड़ाई से लागू करने का एक कारण था। लेकिन 1961 से काफी परिवर्तन आ चुके हैं तथा अब विनियमों को कारगर बनाने, कारपोरेट को इन कार्यक्रमों को चलाने के लिए, प्रशिक्षुओं के हित को संरक्षित करते हुए प्रोत्साहित करने हेतु सरल मानक और प्रावधानों की जरूरत है।

इसे कैसे कार्यशील बना सकते हैं?

प्रशिक्षुता की देखभाल हेतु बनाए गए नियमों ओर विनियमों में ऐसे परिवर्तन किए जाएं जिससे नियोक्ता और भावी प्रशिक्षु इस आधार पर आपस में एक दूसरे का आराम से चयन कर सकें कि जॉब पर क्या सीखा जाएगा तथा क्या न्यूनतम मजदूरी होगी।

2009 में योजना आयोग ने प्रशिक्षुता अधिनियम तथा नियम के संबंध में आने वाली समस्याओं की पहचान करने तथा कौशल युक्त कार्यबल हेतु परिवर्तन सुझाने तथा इसे प्रभावी और महत्वपूर्ण बनाने के लिए एक कार्य दल गठित किया। इसकी सिफारिशें तथा अन्य मुद्दों पर चर्चा इस प्रकार है--

1. **अधिक सरल विनियम:** पूरे भारत में प्रशिक्षुता कार्यक्रम हेतु कंपनी के आवेदनों के निपटारे हेतु एक खिड़की व्यवस्था की जरूरत है। इस समय कंपनी को प्रत्येक प्रदेश के प्रशिक्षुता सलाहकार को अलग-अलग सम्पर्क करना और भिन्न भिन्न मानकों को पूर्ण करना पड़ता है। समय पर अनुमति देकर तथा विनियमों को युक्तियुक्त बनाकर कंपनियों के विशेष प्रशिक्षुता कार्यक्रम तथा कंपनी, उद्योग फैडरेशनों के मध्य भागीदारी को बढ़ावा देने चाहिए।
2. **व्यापक पहुंच:** प्रशिक्षु केवल विशिष्ट व्यवसायों में ही अनुमत्य हैं। कुल अभियांत्रिकी भिन्न (विज्ञान, कला, अर्थशास्त्र आदि) स्नातकों में से 84 प्रतिशत इस समय औपचारिक प्रशिक्षुता में कवर नहीं होते हैं। इसके अतिरिक्त नए व्यवसायों विशेषकर सेवाएं, जो अभी तक इससे बाहर हैं, को शामिल करने की प्रक्रिया जटिल है और इसमें कई माह लग सकते हैं। प्रशिक्षुता को गतिशील और कार्यस्थल की बदलती जरूरतों के साथ तालमेल हेतु सूची विनियमन को पूर्ण रूप से हटाने की आवश्यकता है।
3. **कम्पनियों को सुविधाएं:** कर्मचारियों को अधिक छूट देने तक स्वयंसेवक के रूप में मान्यता देने की अधिक जरूरत है। कंपनियों और व्यवसायों की जरूरत के अनुसार प्रशिक्षता प्रशिक्षण अवधि की अनुमति होनी चाहिए। इस समय अनेक योजनाएं अनावश्यक रूप से अधिक समय (4 वर्ष तक) ले लेती हैं। लघु अवधि कार्यक्रम (12 माह से कम) इस क्षेत्र से बाहर होनी चाहिए बशर्ते वे न्यूनतम मजदूरी का भुगतान करें। प्रशिक्षुता और कामगोरों का अनुपात कठोर है। प्रशिक्षुता कार्यक्रमों से आकार अनुपात हटाने से क्षमता सृजन में वृद्धि हो सकेगी। कंपनियों, यहां तक कि छोटी चूकों के लिए भी बहुत गंभीर दंड प्रावधान हैं।
4. **प्रशिक्षण की दोहरी प्रणाली:** जर्मनी की तर्ज पर आदर्श नियोजक प्रायोजित कार्यक्रमों की अनुमति दी जानी चाहिए। इसमें बाहर से सैद्धान्तिक प्रशिक्षण तथा शैक्षिक संस्थाओं को बाहर से व्यवहारिक प्रशिक्षण कराने की अनुमति होनी चाहिए। कंपनियों तथा संस्थानों में भागीदारी को प्रोत्साहित करना चाहिए।
5. **सक्रिय एक्सचेंज:** भावी प्रशिक्षुओं के लिए नियोजकों के अनुरूप सक्रिय एक्सचेंज और पोर्टल होने चाहिए।

*प्रांजुल भंडारी द्वारा तैयार किया गया।

2.51 सरकार की औपचारिक प्रशिक्षुता कार्यक्रम जैसी योजनाएं नियोजकों के शिक्षा से जुड़ जाने से श्रम बल को रोके रखने, तैयार करने तथा प्रोन्नत करने हेतु संगत कौशल प्रदान करने हेतु सशक्त भूमिका निभा सकते हैं। प्रशिक्षुता अधिनियम तथा नियम अपने वर्तमान स्वरूप में नियोजक और नियोजित दोनों के ही परिप्रेक्ष्य में पुराने और कठोर हैं। बॉक्स 2.7 में वर्तमान अधिनियम नियम की चर्चा की गयी है तथा अपेक्षित परिवर्तनों को सुझाया गया है।

बॉक्स 2.8 : बेहतर नीति के लिए प्रभाव का प्रयोग: भारत में प्राथमिक शिक्षा का मामला*

शिक्षा में निवेश का योगदान बेहतर उत्पादकता, रोजगार और मजदूरी के माध्यम से सकल आर्थिक विकास तथा विकास प्रक्रिया में नागरिकों को भागीदार बनाने में है, और इसलिए निवेश भारत सरकार के समावेशी विकास के एजेंडा का एक महत्त्वपूर्ण संघटक है। सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत शिक्षा निवेशों में विगत दशक में काफी वृद्धि रही है, और इस अतिरिक्त व्यय से प्राथमिक स्कूल जाने, अवसंरचना, गुरू-शिष्य संबंधों, अध्यापक वेतन एवं विद्यार्थी नामांकन सुधारने में काफी प्रगति हुई है। तथापि, विद्यार्थी शिक्षण स्तर और ट्रैजेक्ट्रीज चिंताजनक रूप से निम्न हैं और देश में किए गए निरूपक अध्ययनों से पता चला है कि 6-14 आयु वर्ग के 60 प्रतिशत से अधिक बच्चे दूसरे ग्रेड स्तर पर पढ़ने में असमर्थ हैं। इसके अतिरिक्त, इन आंकड़ों से विगत वर्षों में सुधार का कोई संकेत दिखायी नहीं दिया है। (और स्थिति कदाचित और बिगड़ भी सकती है बॉक्स 13.4 में चर्चित एएसईआर अध्ययन देखें।)

पिछले दशक में उद्देश्यों पर अनेक उच्च गुणवत्ता वाले अनुभवजन्य अध्ययन भी देखे गए हैं तथा उनका आपसी संबंध डाटा के लार्ज सैंपलों पर आधारित बेहतर शिक्षण परिणामों से है और सावधानीपूर्वक ध्यान सामान्य संबंधों की पहचान पर दिया गया। इन शोध ने उन हस्तक्षेपों/निविष्टियों की पहचान की है जो बेहतर शिक्षा परिणामों में सार्थक रूप से योगदान न करते दिखायी दिए हैं, साथ ही उन हस्तक्षेपों को भी उल्लिखित किया गया है जो प्रभावी रहे हैं। विशेष रूप से, पिछले दशक में किए गए शोध से पता चलता है कि ''सामान्य कार्य'' की तरह प्राइमरी शिक्षा में वर्धित निविष्टियों से विद्यार्थी शिक्षण सार्थक रूप, से सुधरने की संभावना नहीं है जब तक कि अध्यापन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन और/या स्कूल अभिशासन में सुधार नहीं कर दिए जाते हैं। अत: यह आवश्यक है वे शिक्षा नीति में ध्यान, ''सामान्य कारबार'' की तरह अधिक स्कूलों की व्यवस्था करने से हटाया जाए तथा शिक्षा परिणामों पर सुधारने पर दिया जाए।

स्कूल निविष्टियां

प्रशासनिक और सर्वे आंकड़ों के विश्लेषण से स्कूली गुणवत्ता ये अधिकांश निविष्टि-आधारित उपायों में पर्याप्त सुधार दिखायी दिया है परन्तु शिक्षण परिणामों के संबंध में स्कूल सुविधाओं में इन सुधारों का बहुत प्रभाव है। इससे यह पता नहीं चलता है कि शिक्षण परिणामों को सुधारने के लिए स्कूल अवसंरचना कोई महत्त्व नहीं रखती है (वे कदाचित आवश्यक हो सकती है परंतु पर्याप्त नहीं हैं) परंतु परिणामों से यह पता चलता है कि केवल अवसंरचना से शिक्षण स्तरों एवं ट्रैजेक्ट्रीज पर कोई महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ने की संभावना नहीं है। इसी प्रकार, जहां एक ओर मिड-डे-मील कार्यक्रमों के लिए सामाजिक और मानवीय कारण कदाचित अच्छे हो सकते हैं, वही दूसरी ओर इस बात का प्रमाण नहीं है कि वे शिक्षण परिणामों में सुधार करते हैं।

(जारी....)

बॉक्स 2.8 : बेहतर नीति के लिए प्रभाव का प्रयोग: भारत में प्राथमिक शिक्षा का मामला* (जारी)

एक चौंकाने वाला तथ्य यह है कि भारत में शिक्षा पर कोई विश्वसनीय अध्ययन नहीं किया गया है जिससे अध्यापकों के पास औपचारिक अध्यापक प्रशिक्षण प्रत्यय-पत्र (क्रिडेंशियलस) होने और विद्यार्थी शिक्षण सुधारने के लिए उनकी प्रभावशीलता के बीच कोई महत्त्वपर्ण सकारात्मक संबंध पाया गया हो। इसी प्रकार, अध्यापक वेतन और विद्यार्थी शिक्षण सुधारने के लिए उसकी प्रभावशीलता के बीच कोई आपसी संबंध नहीं है, तथा शिक्षण परिणामों पर गुरू-शिष्य संबंधों को कम करने के अत्यंत सीमित सकारात्मक प्रभाव हैं। इसके अलावा यह भी चर्चा की गयी है, इन अत्यंत कड़े निष्कर्षों में, अध्यापन और अभिशासन में अधिकांशतया संभवत: कमजोरी परिलक्षित होती है, जो वधित व्यय को बेहतर परिणामों में बदलने में मुख्य बाधाएं हैं।

अब तक सारांशीकृत परिणाम अत्यंत निराशाजनक हो सकते हैं। सौभाग्यवश, यह खबर बिल्कुल खराब नहीं है क्योंकि पिछले दशक का परिणाम भी लगातार हस्ताक्षेपों की ओर संकेत करता है जो शिक्षण परिणाम सुधारने के लिए अत्यंत प्रभावी रहा है, तथा यह व्यय करने के यथास्थित पेटर्न की अपेक्षा कहीं अधिक किफायती तरीके से करने में समर्थ रहा है।

अध्यापन

स्कूली निविष्टियों को कैसे शिक्षण परिणामों में बदला जाए, उसका एक मुख्य निर्धारक, अध्यापन और कक्षा अनुदेश की संरचना है। अनुदेश अधिकार के पहलु प्राप्त करना विशेषकर भारत के परिप्रेक्ष्य में, जहां प्रथम-पीढ़ी के कई लाख सीखने वाले तेजी से विस्तार करते राष्ट्रीय स्कूली प्रणाली में सम्मिलित हो गये। विशेषकर मानक गतिविधियों में, पाठ्यपुस्तकों और शिक्षण पद्धतियां, जो कदाचित उस समय और तैयार की गयीं जब शिक्षा की पहुंच अधिक सीमित थी, नई परिस्थितियों में कदाचित ठीक न हो, क्योंकि दोषपूर्ण अध्यापन पाठ्यपुस्तकों को केवल पूर्ण करना भर है जो कक्षा में बच्चों के सीखने के स्तरों को ठीक से परिलक्षित नहीं करता है। इसके अलावा, वे कक्षा में काफी फिसड्डी रह जाते हैं जबकि पाठ्यपुस्तकों में उनसे आगे बढ़ने की अपेक्षा होती है। प्रमाण, कि ''सामान्य कार्य अध्यापन को सुधारा जा सकता है, कई निरुद्देश्य मूल्यांकनों में पाया जाता है। प्रारंभिक ग्रेडों में अनुपूरक उपचारात्मक अनुदेश के बड़े सकारात्मक प्रभावों को बच्चे थे वर्तमान शिक्षण स्तर लक्षित किया गया है (केवल पाठ्य पुस्तकों का अनुसरण करने के विरोध के रूप में)। अनेक स्थानों (उत्तर प्रदेश, बिहार, उत्तराखंड, गुजरात, महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश सहित) में लाभ-भिन्न संगठनों द्वारा चलाए जा रहे कार्यक्रमों में, इन सकारात्मक परिणामों को लगातार पाया जाता है। दूसरा, इन हस्तक्षेपों से अनुमानित प्रभाव (जिनका शिक्षाप्रद समय विशेष रूप से अनुसूचित स्कूल वर्ष की अवधि का केवल एक लघु भाग होता है) काफी है-प्राय: एक शैक्षणिक वर्ष से प्राप्त शिक्षण लाभों से अधिक है। तीसरे ये हस्तक्षेप विशेष रूप से कम वेतन पाने वाले सामुदायिक अध्यापकों द्वारा किए जाते हैं। ज्यादातर इनके पास औपचारिक अध्यापक प्रशिक्षण प्रमाणपत्र नहीं होते हैं। अन्ततोगत्वा, में अनुपूरक उपचारात्मक शिक्षा कार्यक्रम अत्यंत किफायती है और मानक इनपुटस में बड़े निवेशों की तुलना में बहुत कम लागत पर महत्वपूर्ण शिक्षा लाभ प्रदान करते हैं।

अभिशासन

अध्यापन के अलावा, शैक्षणिक इनपुटस पर व्यय में वृद्धियों और उन्नत शिक्षण परिणामों के बीच कम आपसी संबंध के लिए अन्य स्पष्टीकरण कदाचित शिक्षा प्रणाली के कमजोर अभिशासन और विद्यार्थी शिक्षण स्तरों को सुधारने के लिए अध्यापकों एवं प्रशासकों की ओर से किए जाने वाले सीमित प्रयास हो सकते हैं कमजोर अभिशासन का सर्वाधिक चौंकाने वाला तथ्य यह है कि सरकार द्वारा संचालित स्कूलों में अध्यापकों की अनुपस्थित काफी अधिक रहती है। वर्ष 2003 देश भर में अध्यापक अनुपस्थित दर 25 प्रतिशत से अधिक रही, वहीं 2003 में उन्हीं गांवों के अखिल भारतीय स्तर पर किए गए सर्वेक्षणों से पता चला कि ग्रामीण भारत में 2010 में अध्यापक अनुपस्थिति अभी भी 24 प्रतिशत के आसपास है। अध्यापक अनुपस्थिति की वित्तीय लागत का अनुमान लगभग 7,500 करोड़ रुपए प्रतिवर्ष लगाया था जिसमें सुझाया गया है कि अभिशासन चुनौतियां सर्वोपरि रहती हैं। इस बात के प्रमाण हैं कि अभिशासन में कम सुधारों से भी महत्वपूर्ण प्रतिफल मिल सकते हैं। स्कूलों की मानीटरिंग और पर्यवेक्षण का सुधार का आपसी संबंध पर्याप्त रूप से अध्यापक अनुपस्थिति में कटौतियों के साथ है, और मानीटरिंग की फ्रीक्वेंसी बढ़ाकर बेहतर अभिशासन में निवेश से, अध्यापक अनुपस्थिति की वित्तीय लागत घटाकर निवेशों पर आठ से दस गुणा प्रतिफल मिल सकता है।

इस प्रमाण में, अच्छे निष्पादन का इनाम देकर अध्यापकों को प्रेरित करने की महत्ता का भी उल्लेख है। आंध्र प्रदेश में अध्यापक निष्पादन वेतन की ध्यानपूर्वक तैयार की गयी प्रणालियों के कठोर मूल्यांकन ने अध्यापकों के लिए निष्पादन संबद्ध वेतन की अत्यंत कम धनराशियों (जो विशेष रूप से वार्षिक वेतन के 3 प्रतिशत से अधिक नहीं थी) का भुगतान करके विद्यार्थी शिक्षण में महत्वपूर्ण सुधार परिलक्षित किए हैं। दीर्घकालिक अनुवर्ती कार्रवाइयों से यह पता चला है कि अध्यापक निष्पादन वेतन, गुरू-शिष्य संबंधों में कटौतियों के मुकाबले, विद्यार्थी शिक्षण सुधारने के लिए 15 से 20 गुणा अधिक प्रभावी है। अधिक व्यापक रूप से इन परिणामों से पता चलता है कि फ्रंटलाइन सरकारी कर्मचारियों का निष्पादन वेतन के स्तर पर कम और इसकी संरचना पर अधिक निर्भर करता है। प्रमाण से नीति तक इस अनुसंधान निकाय की इन तीन आवश्यक नीतिगत विविक्षाओं का सारांश इस प्रकार है:

(1) शिक्षण परिणामों को प्राइमरी शिक्षा नीति का एक स्पष्ट ध्येय बनाना और शिक्षण परिणामों के नियमित एवं स्वतंत्र उच्च गुणवत्ता मापन में निवेश करना: यद्यपि शिक्षण परिणामों पर स्वतंत्र रूप से मापक ओर प्रशासनिक रूप से ध्यान देकर भी अपने आप सुधार नहीं होगा, फिर भी इससे परिणाम पर शिक्षा प्रणाली की ऊजाओं पर ध्यान केन्द्रित होगा। यह वस्तुत: प्रथम पीढ़ी के लाखों सीखने वालों के लिए महत्व रखता है जो कार्यात्मक साक्षरता एवं संख्यात्मक है।

(2) बच्चों के वर्तमान शैक्षणिक स्तर के लिए लक्षित एक राष्ट्रीय अनुपूरक शिक्षा अभियान शुरू करना । (जैसाकि पाठ्यपुस्तकों के अनुसार पढ़ाने के लिए विरोध किया गया है) स्थानीय रूप से हायर किए गए अध्यापक सहायकों द्वारा डिलीवर किया गया; इसका उद्देश्य शिक्षण के न्यूनतम निर्बाध मानक सभी बच्चों के लिए उपलब्ध हो: एक मिशन की अत्यावश्यकता है जैसे सभी बच्चों के लिए कार्यात्मक साक्षरता

(जारी....)

बॉक्स 2.8 : बेहतर नीति के लिए प्रभाव का प्रयोगः भारत में प्राथमिक शिक्षा का मामला (जारी)*

एवं संख्या विषयक जानकारी देने पर ध्यान केन्द्रित करना जिसमें बच्चों को 'सीखने के लिए पढ़ें' की अनुमति हो। इस प्रमाण में, स्थानीय रूप से हायर किए गए अल्पकालिक अध्यापन सहायकों का उपयोग करके अनुपूरक शिक्षा कार्यक्रमों को बढ़ावा देना, इन कार्यक्रमों का लक्ष्य बच्चे के सीखने के स्तर के बारे में हो, और इन हस्तक्षेप की लागत प्रभावशीलता भी इसे आसानी से आरोह्य बनाती है।

(3) बेहतर मानीटरिंग एवं पर्यवेक्षण तथा अध्यापक निष्पादन मापक और प्रबंध सहित, अध्यापक अभिशासन के मामलों की ओर तत्काल ध्यान देनाः संगठनों के प्रभावी प्रबंध के मूल सिद्धान्त में स्पष्ट लक्ष्य हों और इन लक्ष्यों की प्राप्ति में योगदान के लिए कर्मचारियों को इनाम मिले। जिस सीमा तक यथापूर्व स्थिति इसे प्रभावी ढंग से नहीं करती है उसे संगठनात्मक लक्ष्यों के बारे में कर्मचारी की सिधाई में बहुत कम सुधारों से पाए गए बड़े सकारात्मक प्रभावों में रेखांकित किया जाए। शिक्षा और उससे बाहर भी इन विचारों को क्रियान्वित करने के संभावित रूप से व्यापक प्रतिफल हो सकते हैं।

आगामी दस वर्षों में, भारतीय इतिहास में (या भविष्य में) किसी भी अवस्था पर स्कूल प्रणाली में बहुत बड़ी संख्या में नागरिक दिखाई देंगे, और यह महत्वपूर्ण है कि यह पीढ़ी जो जनसांख्यिकीय भाज्य का प्रतिनिधित्व करती है, को साक्षरता, संख्या-विषयक और कौशल, जो त्वरित रूप से आधुनिक होते जा रहे विश्व में पूरी तरह से भागीदार बनने के लिए आवश्यक है, से सज्जित किया जाए। वित्तीय तंगी वाले परिवेश में लागत प्रभावी नीतियों को क्रियान्वित करने के प्रमाण का प्रयोग करना भी आवश्यक है। ऐसी नीतियों से लोक निवेश के किसी स्वीकृत स्तर पर सामाजिक प्रतिफलों को अधिक से अधिक किया जाता है। पिछले दशक में प्राइमरी शिक्षा पर उच्च गुणवत्ता वाले अनुसंधान के बढ़ते निकाय इस सिद्धांत को क्रियान्वित करने का अवसर प्रदान करता है।

स्रोतः कार्तिक मुरलीधरन द्वारा तैयार किया गया।
[1] विस्तृत चर्चा और यहां सारबद्ध अध्ययन के लिए देखें (मुरलीधरन 2012)

2.52 कौशल विकास तथा प्रशिक्षण से संबंधित मुद्दों को सुलझाने के लिए गुणवत्ता और मात्रा दोनों की चुनौतियों से निबटना है जिससे नियोजकों को जिन्हें अपेक्षित कौशल के व्यक्ति नहीं मिलते तथा नौकरी चाहने वाले व्यक्ति जिन्हें रोजगार नहीं मिलते, इन दोनों के मध्य असंतुलन को दूर किया जा सके। राष्ट्रीय कौशल विकास निगम का उद्देश्य अगले 5 वर्षों में 8 करोड़ व्यक्तियों को राज्य सरकारों/राज्य कौशल मिशन तथा निजी क्षेत्र (पीपीपी और लाभ आधारित व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा गैर सरकारी संगठनों के माध्यम से रोजगारोन्मुखी प्रशिक्षण प्राथमिक शिक्षा भी मानवीय पूंजी की वृद्धि एम महत्वपूर्ण निवेश है। गुणवत्ता युक्त प्राथमिक शिक्षा तक पहुंच बढ़ाने के लिए सरकार के हाल ही के प्रयास महत्वपूर्ण हैं, तथापि, और अधिक कार्य करने की आवश्यकता है (बॉक्स 2.8 देखें)।

परिणाम और निष्कर्ष

2.53 हालिया आर्थिक इतिहास में अर्थव्यवस्थाओं, जिन्हें अत्यधिक क्षमता वाली समझा गया था, के अनेक उदाहरण हैं परन्तु अंततोगत्वा तीव्र आर्थिक वृद्धि एवं जीवन-स्तरों में सुधार प्राप्त नहीं किया जा सका। उसी समय, हमारे पास बास्केट मामलों के रूप में वर्गीकृत अर्थव्यवस्थाओं, जिनसे त्वरित लाभ प्राप्त हुए, के उदाहरण हैं। भारत में सुधारों के पश्चात् उपलब्धियों और दक्षिण कोरिया की अर्थव्यवस्था में त्वरित रूप से बदलाव अवश्य ही बाद वाली श्रेणी में आता है। परन्तु भारत का त्वरित विकास पथ पर बढ़ते रहना पूर्व-निर्धारित नहीं है। अनुकूल परिस्थितियों के बावजूद, इसके लिए दक्ष नीति-निर्माण एवं भावी व्यापक विजन की आवश्यकता है जिसमें संभावित जोखिम, और अवसर हों। हम एक ऐसे चौराहे पर खड़े हैं जहां हमें सतत् समावेशी विकास के लिए एक स्पष्ट कार्यनीति तैयार करने की आवश्यकता है। हम विचार करें कि विभिन्न परिदृश्यों में क्या हो सकता है। ये परिकल्पित परिदृश्य है, और सूचित अटकलबाजी पर आधारित होते हैं, परन्तु उन ताकतों को परिलक्षित करते हैं जो भूमिका निभाएंगी।

हमेशा की तरह कारबारः अवसंरचना में कुछ सुधार परंतु शिक्षा में केवल धीमा सुधार, और कारबार विनियमन और श्रम कानूनों जैसे संस्थागत ढांचे में कोई बदलाव नहीं। कृषि से निर्माण और घरेलू कार्य जैसी कम कौशल वाली सेवाओं तथा अनौपचारिक विनिर्माण एवं कुछेक क्वालिटी नौकरियों में भी उतार-चढ़ाव। जीडीपी विकास 6-7 प्रतिशत के सुखद स्तर पर टिकी। विनिर्माण क्षेत्र में असंरक्षित वर्करों की बढ़ती उपस्थिति है और बढ़ते श्रम संघर्षों की संभावना है। विद्यार्थियों को कार्यक्रम बनाने के लिए शिक्षा पर बहुत दबाव है लेकिन संगठित विनिर्माण क्षेत्र कामगारों को प्रशिक्षित करने में छोटी भूमिका निभा रहा है और जॉब-स्किल दे रहा है। नियोजक की आवश्यकताएं और कामगार की क्षमता के मध्य लगातार असमानता बनी हुई है। वृद्धि, जितनी होनी चाहिए उससे कम है तथा असमानता, जितनी होनी चाहिए उससे अधिक है।

सुधारः अधोसंरचना, शिक्षा के साथ-साथ व्यापारिक विनियमों और श्रम कानूनों में बहुत सुधार आए। कामगारों की कृषि पर निर्भरता में कमी, व्यापक खेती और पूंजी तथा तकनीक में अधिक निवेश से उद्यानिकी, डेरी उत्पादन और भैंस जैसी विशिष्ट ग्रामीण उद्यमिता से कृषि क्षेत्र से बहुत स्वस्थ बना सकता है। विनिर्माण क्षेत्र कामगारों के लिए प्रशिक्षण स्थल, मिडिल और हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण अधिक विद्यार्थियों को खपाने का क्षेत्र बन जाता है। भारत चीन द्वारा खाली किए गए छोटे स्थान तथा अर्द्ध-कुशल, विनिर्माण में कुशल विनिर्माण एवं सेवा क्षेत्र में इसके लाभ बढ़ाने हेतु अग्रसर होता है। भारत तेजी से और अधिक समुचित वृद्धि की ओर अग्रसर है। कृषि और विनिर्माण दोनों द्वारा जीविका बेहतर बनाने से सामाजिक मनमुटाव भी न्यूनतम हो गए हैं।

गिरावटः शिक्षा और संस्थाओं में कोई अधोसंरचनात्मक सुधार नहीं हुआ। कृषि क्षेत्र के बाहर बहुत कम नौकरियां सृजित होने, कृषि पर अधिक निर्भरता खेती पर दबाव बढ़ने के कारण आय में कमी आयी। छोटे कृषि भूखंडों से न तो पर्याप्त आय हो पाती है और न उन्हें लीज पर दिया जा सकता है। पुरुषों के अन्यत्र काम ढूंढने और कामगारों की भागीदारिता बढ़ने से अधिक परिवार टूट जाते

हैं। अतिभार से ग्रस्त नगरों में बड़े पैमाने पर प्रवसन हो जाता है। कृषि को अधिक सहायता प्रदान करनी चाहिए। तथा प्रवसन को रोकने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानांतरण करने चाहिए। सरकारी वित्त साधनों पर दबाव बढ़ने से नगरों की अच्छी नौकरियां तथा ग्रामीण क्षेत्रों में सीमान्त कृषि संबंधी रोजगारों से अर्जित आय में असमानता काफी बढ़ जाती है। सामाजिक तनाव बढ़ते हैं।

2.54 विकृतियों के इन परिदृश्य को किसी भी रूप में निर्णायात्मक नहीं बल्कि सांकेतिक रूप में देखना चाहिए। इस अध्याय का मुख्य नीतिगत संदेश यह है कि भारत को कृषि क्षेत्र के बाहर उत्पादक जॉब सृजित करने पर फोक्स करना चाहिए, जिससे हमें जनसांख्यिकी डिवीडेन्ट पाने, कृषि में जीविका विकास में मदद मिलेगीं हमें सावधानीपूर्वक यह परीक्षण करने की आवश्यकता है कि क्या विनियमों का व्यापार पर अतिरिक्त दबाव है, औरयदि ऐसा है, तो कामगारों के लिए न्यूनतम संरक्षा जाल और समुचित संरक्षण सुनिश्चित करने के लिए अति विनियमों को हटा देना चाहिए। अधोसंरचना निर्माण तथा वित्तीय पहुंच विस्तार भी सहायता करेगा। जबकि सरकार स्पष्ट-रूप से इस प्रक्रिया में जुटी हुई हैं कुछ अन्य उपायों पर बहस और कार्रवाई की जरूरत है। आशा है कि यह अध्याय उस बहस के लिए सूचना सहायता देगा।

संदर्भ

अमीन, मोहम्मद (2008) श्रम नियमन और भारत के खुदरा स्टोर में रोजगार, सामाजिक सुरक्षा और श्रम चर्चा पत्र संख्या 0816, विश्व बैंक।

एशियाई विकास बैंक (2009), प्रमुख संकेतकों में 2009: एशिया में उद्यम को बढ़ावा देने में गतिशीलता एसएमई, मनीला।

अय्यर, एस और ए. मोदी (2011), 'जनसांख्यिकीय लाभांश: भारतीय राज्यों से साक्ष्य, आईएमएफ वर्किंग पेपर।

बेली, एम.जे. (2006), 'पिल के लिए मोर पावर: महिलाओं के जीवन चक्र पर गर्भनिरोधक स्वतंत्रता श्रम आपूर्ति पर प्रभाव, इकोनामिक त्रैमासिक पत्रिका 121:289-320.

बर्गर, एलन, नाथन मिलर, मिशेल पीटरसन, राजन, रघुराम, और जेरेमी स्टीन (2005) क्या, 'समारोह संगठनात्मक फार्म का पालन करता है? बड़े और छोटे बैंकों की उधार प्रथाओं से साक्ष्य जर्नल आफ फाइनेंशियल इकोनामिक्स 76:237-69।

बैसले टी., और आर बर्गेस (2004), क्यों 'नियमन आर्थिक प्रदर्शन में बाधा कर सकते हैं? भारत से साक्ष्य 'इकोनामिक, त्रैमासिक पत्रिका: 119(1) 91-134

बोसबर्थ एम., और एस.एम. कोलिन्स (2003), 'द एमफेटिक्स आफ ग्रोथ-एन अपडेट। ब्रोकिंग्स पेपर्स ऑन इकोनॉमिक्स:

एम. दत्ता-चौधरी, (1996). 'भारत में सामाजिक संस्थाओं के रूप में श्रम बाजार, आईआरआईएस भारत वर्किंग पेपर नं 10, यूनिवर्सिटी आफ मेरी लैंड कॉलेज पार्क।

डेविस, स्टीव जॉन सी. हाल्तीरेंगर, और स्कॉट शू (1998), रोजगार सृजन और विनाश, एमआईटी प्रेस, कैम्ब्रिज।

देबरॉय बी (2010), विभाजन और जनवादी गणराज्य चीन के श्रम बाजार में एकीकरण: भारत के लिए सबक: के गुर हैरर, वाई इवोसकी और वी.बी. तलासीधर (ईडीएस), रिसर्जिंग, एशियन गेम्स लैसन्स फ्राक पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना एंड इंडिया। मनीला एशियन डेवलपमेंट बैंक 167-200 पीपी।

डी सोटो, एच. (1989), द अदर पाथ, हार्पर और रो पब्लिशर्स, न्यूयॉर्क।

डी जान कोव, एस, आर ला पोर्टा, एफ लोपेज-डी-सिलान्से और ए 'सेलीपर (2002), प्रवेश का विनियमन, द जर्नल आफ इकोनामिक्स त्रैमासिक 117, (1) 1-37

डोफेरटी, एस (2008), 'भारत में श्रम नियमन और राज्य स्तर पर रोजगार गतिशीलता, ओईसीडी

अर्थशास्त्र विभाग के कागजात सं 624

डोफेरटी, एस, कुलपति फ्रीसेंको रोबल्स, और के कृष्णा (2011) 'भारत में रोजगार संरक्षण कानून और संयंत्र स्तर उत्पादकता, एनबीईआर वर्किंग पेपर नं. 17693

फेरर, जे (2007) जनसांख्यिकी, 'और उत्पादकता, आर्थिक एवं सांख्यिकी, की समीक्षा: 89(1) 100-9।

गुप्ता पी एव. यू. कुमार (2011) 'भारत में विनिर्माण की वृद्धि श्रम नियमों और इन्फ्रास्ट्रक्चर की भूमिका की व्याख्या इंडियन इकोनामी हैंडबुक, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।

गुप्ता पी. आर. हसन, और यू कुमार (2008), 'बड़े सुधार लेकिन छोटे भुगतान:, भारतीय विनिर्माण क्षेत्र में विकास के रिकॉर्ड, 'एस बेरी, बी बौसबर्थ, और ए. पानागरिया (ईडीएस), भारत नीति फोरम, खंड 5, सागे, दिल्ली, पीपी 59-108

हसन, आर, के रॉबर्ट, और एल जनडॉक (2012) लेबर रेगुलेशन, 'और फर्म साइज डिस्ट्रीब्यूशन भारतीय विनिर्माण', भारतीय आर्थिक नीतियों पर कोलंबिया कार्यक्रम, वर्किंग पेपर 2012-3 सं.

हसन, आर, डी. मित्रा, और ए सुंदरम (2012), 'व्हाट एक्सप्लेन्स द हाई कैपिटल इंटेंसिटी आफ इंडियन मैन्युफैक्चरिंग? इंडियन ग्रोथ एंड डेवलपमेंट रिव्यू बुकिंग इंस्टीटयूशनल प्रेस

हसन, आर, एस लांबा, और ए सेन गुप्ता (2012) 'ग्रोथ, संरचनात्मक परिवर्तन, और भारत में गरीबी उन्मूलन, वर्किंग पेपर, भारत निवासी मिशन, एशियाई विकास बैंक।

हीश सी., और पी जे क्लीनौव (2011), 'भारत में पौधों के जीवन चक्र और मेक्सिको', शिकागो बूथ अनुसंधान वर्किंग पेपर 11-38 सं.

अध्याय 3: अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व आर्थिक आउटलुक (2006), 'आर्थिक विकास और विकास के पैटर्न एशिया आईएमएफ, विश्व आर्थिक आउटलुक डेटाबेस (2011), सितंबर 2011.

कोचर, के.एच., यू कुमार, आर राजन, ए सुब्रहमण्यम, और मैं टुकटलिडिस (2006), ''भारत के विकास के पैटर्नः क्या हुआ क्या इस प्रकार है, 'मौद्रिक अर्थशास्त्र के जर्नल 53:981-1019.

हसन आर एस लाम्बा एंड ए. सेन गुप्ता (2012) ग्रोथ स्ट्रकचरता चेंज एडं पार्वटी रिडक्शन इन इंडिया। वर्किंग पेपर इंडिया रेजीडेंट मिशन, एशियन डेवलपमेंट बैंक

हीश सी एंड पी जे कीनो (2011) द लाइफ साइकिल आफ प्लान्स इन इंडिया एंड मैकिस्को शिकागो बूथ रिसर्च वर्किंग पेपर न. 11-38

आइएमएफ वर्ल्ड इकोनामिक आउट लुक (2008), एशिया राइजिंग पैटर्न आफ इकोनामिक डेवलपमेंट एंड ग्रोथ, चेप्टर 3

आईएमएफ वर्ल्ड इकोनामिक आउटलुक डाटाबेस (2011) सितम्बर 2011

कोचर के, यू कुमार, आर. राजन, ए सुब्राह्मणियम, एंड टोम्लॉडिस (2006) इंडियास पैटर्न आफ डेवलपमेंट व्हाट हैपेन्ड, व्हाट फॉलोज? जर्नल आफ मानेटरी इकोनामिक्स 53931-1018

कोइल आर एंड ए. सिन्हारे (2011) शेयर आफ इनफोर्मल सेक्टर एंड इनफार्मल एम्प्लायमेंट इन जीडीपी एंड एम्प्लायमेंट जर्नल आफ इनकम एंड वैल्थ 3312 जुलाई-सितंबर (2012)

क्रूगर ए. ओ (2007), द मिसिंग मिडिल, स्टेनफोर्ड सेंटर फार इंटरनेशनल डेवलपमेंट वर्किंग पेपर नं. 343

लेविस ए (1954) इकोनामिक डेवलपमेंट विथ अनलिमिटेड सप्लाई आफ लेबर, द मैनचेस्टर स्कूल आफ इकोनामिक्स एंड सोशल स्टडीज,

लेवी एस (2008) गुड इन्टेंशन बैंड आउटकम, सोशल पालिसी इनफॉर्मेलिटी एंड इकोनामिक ग्रोथ इन मैक्सिको, वाशिंगटन

नेहरू वी., और ए, धरेश्वर (1993), 'ए न्यू डाटाबेस ऑन फिजिकल केपिटल स्टाक, सोर्सेज मैथडोलॉजी एंड रिजल्टस रेवेसिटा डी एनालाइसिस', इकोनामिको, 8 (1): 37-59।

पनगरिया, ए (2008), इंडिया द एमर्जिंग जाइंटस, न्यूयार्कः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

पनगरिया ए, (2004), इंडियास ट्रेड रिफार्म इन एस बेरी, बी वर्सबार्थ, और ए पनगरिया, इंडिया पालिसी फोरम, खंड I पीपी। 1-57, नई दिल्ली।

टू स्ट्रैट्जी फॉर इकोनामिक डेवलपमेंट यूजिंग आइडियास एंड प्रोडयूसिंग आइडियास। प्रोसीडिंग्स आफ द वर्ल्ड बैंक एनुअल कांफ्रेंस आन डेवलपमेंट इकोनामिक्स।

टीम लीज (2012), भारत श्रम रिपोर्ट (2012), मैसीफाइंग इंडियास हायर एजुकेशन और द एम्प्सेस एंड एम्प्लायएबिलिटी, केस फार कम्युनिटी कालेज, टीम लीज एंड जॉब ट्रेनिंग

संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या प्रभाग, (2010), रिवीजन ऑफ वर्ल्ड पापुलेशन प्रास्पैक्ट्स

विश्व बैंक (2013), डूइंग बिजनेस मीजरिंग बिजनेस रेगुलेशन्स

विश्व बैंक (2009), डूइंग बिजनेस इन इंडिया।

विश्व बैंक (2012), विश्व विकास संकेतक, जुलाई।